भाष्यकार श्रीरामानुजाचार्य

का

सचित्र जीवन-चरित

संग्रहकर्त्ता

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा

प्रकाशक

रायबहादुर विश्वेश्वरलाल
मोतीलाल हलवासिया ट्रस्ट,
८, रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता

प्रथम संस्करण सं० १९७२
द्वितायसंस्करण सं० २००३

[बिना मूल्य वितरित]
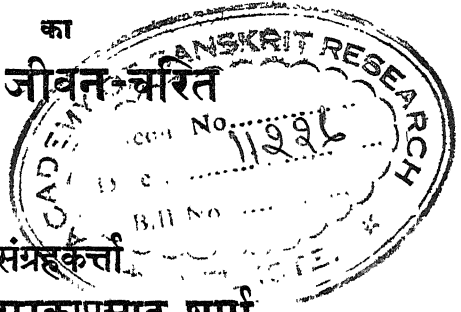
प्रवासी प्रेस,
१२०।२, अपरसरकुलर रोड,
कलकता

द्वितीय संस्करणका प्राक्कथन

आज जब इस पुस्तका द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो रहा है, भ्रातृ-द्वयका शरीरान्त हो चुका है; लेकिन उनकी अमर कीर्त्ति अब भी अमर है। उनके कार्योंको लोग अब भी याद करते हैं। उनकी भावनाओंकी पूजा करनेवाले अब भी वर्त्तमान हैं। इस पुस्तकका द्वितीय संस्करण रायबहादुर विश्वेश्वरलालजी द्वारा संस्थापित ट्रस्ट द्वारा ही प्रकाशित किया जा रहा है। ईश्वर उनकी दिवंगत आत्माओंको शान्ति प्रदान करे, यही हम सबकी प्रार्थना है।

८, रायल एक्सचेंज प्लेस,
कलकत्ता
चैत्र पूर्णिमा, २००३

रायबहादुर विश्वेश्वरलाल
मोतीलाल हलवासिया ट्रस्ट

प्रस्तावना

आज हमारी बहुत दिनोंकी अभिलाषा पूर्ण हुई है। हम बहुत दिनोंसे चाहते थे कि हिन्दी-भाषामें भगवान् भाष्यकार श्रीरामानुजाचार्य स्वामी की जीवनी प्रकाशितकर हम अपना जन्म सफल करें। भगवान्के अनुग्रहसे हमें आज वह सुअवसर प्राप्त हुआ है और भाष्यकारकी जीवनी लेकर हम बड़े अभिमानके साथ आज अपने श्रीवैष्णव बन्धुओंके सम्मुख उपस्थित होते हैं। कहना न होगा कि यह जीवनी हमारे पास कई वर्षोंसे लिखी पड़ी थी, और इसे प्रेसमें छापनेके लिये देनेका सुअवसर इसलिये प्राप्त नहीं हुआ था कि हम भाष्यकारकी जीवनी छपवाकर श्रीवैष्णव मण्डलीमें बिना मूल्य वितरण करना चाहते थे। यदि हम इसे छपवाकर बिकवानेके पक्षपाती होते, तो ऐसे अनेक पुस्तक-प्रकाशक हैं, जो हाथों-हाथ इसका सर्वाधिकार क्रय करके मनमाने मूल्यपर इसे बेचते। पर यह हमको अभीष्ट न था। बहुत दिनों तक हम एक ऐसे उदार-चेता श्रीवैष्णव सज्जनकी खोजमें रहे, जो इस पुस्तकको अपने धनसे प्रकाशित कर बिना मूल्य वितरण करे। अन्तमें दयामय भगवान्के अनुग्रहसे भाष्यकार स्वामीने भिवानीके रहनेवाले तथा कलकत्ता-प्रवासी रायबहादुर बाबू विश्वेश्वर-लालजी हलवासियाको इस शुभ कार्यके करनेकी प्रेरणा की। उक्त रायबहादुर साहबने इस पुस्तकके प्रकाशनका सारा व्यय-भार अपने ऊपर लिया है और बिना मूल्य वितरण करनेका सङ्कल्प किया है। संग्रहकर्त्ताने पुस्तकका सर्वाधिकार रायबहादुर साहबके कनिष्ठ भ्राता चि० बाबू मोतीलालजीको सहर्ष दे दिया है।

जिस महानुभावकी निष्ठा अपने सम्प्रदायमें इतनी है, उसका संक्षिप्त परिचय भी देना हम आवश्यक समझते हैं।

जिन लोगोंका मारवाड़ी-समाजसे कुछ भी सम्बन्ध है, वे पंजाब अन्तर्गत भिवानीके हलवासिया-वंशको अवश्य ही जानते होंगे। इस वंशमें विद्वान्, धार्मिक एवं सदाचारी पुरुष सदासे होते चले आते हैं। रायबहादुर साहबके पितामह वैकुण्ठवासी सेठ यमुनादासजी परम अनन्य श्रीवैष्णव थे। आपका सम्बन्ध वृन्दावन श्रीरंग-मन्दिरके निर्माता श्रीरंग देशिक स्वामीसे था। भिवानी में जो श्रीरंगजीका मन्दिर है, उसमें जितने उत्सव होते थे, उन सबमें यमुनादासजी बड़ी श्रद्धाके साथ सम्मिलित होते थे। आपका भिवानीके सुप्रसिद्ध विद्वान् वासुदेवाचार्यसे बड़ा प्रेम था। भिवानीमें जितने श्रीवैष्णव जाते थे, उन सबको सेठ यमुनादासजीकी ओरसे अमनिया और बिदाईके समय एक रुपया मिलता था। आपकी ओरसे भूतपुरी तथा श्रीरंगमूमें निजके भवन हैं, जिनमें क्षेत्र चलते थे। कहा जाता है कि आपके धनमें से रुपयेके पन्द्रह आने श्रीवैष्णव-कैङ्कर्यमें व्यय होते थे। आपका सौजन्य, भगवद्भक्ति और ब्रह्मण्यता उत्तरसे दक्षिण तक प्रसिद्ध थी। आप संस्कृत भी अच्छी तरह जानते थे और श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण और महाभारतका पाठ कण्ठस्थ किया करते थे। इनके पुत्र और रायबहादुर साहबके स्वर्गवासी पिता सेठ जानकीदासजी थे। सेठ जानकीदासजी दया और उदारताकी तो मानों प्रत्यक्ष मूर्त्ति थे। आप दूसरोंको दुःखी तो कभी देख ही नहीं सकते थे। आपको भले ही कष्ट सहना पड़े, पर दूसरों को कष्टमें देखना आपके लिये असम्भव था। तन-मन-धनसे जैसे हो, वैसे दीन-दुखियोंके दुःखोंको दूर करना आपका व्रत-सा था। आप बड़े सुशील, उदार एवं पूरे व्यापारी थे। आप चालीस वर्षकी अवस्थामें हैदराबादमें पञ्चत्वको प्राप्त

हुए। सेठ यमुनादासजीके द्वितीय पुत्र श्रीयुत सेठ बलदेवदासजी आजकल कलकत्तेमें व्यापार करते हैं। आप एक धार्मिक और मिलनसार सज्जन हैं।

जिस समय रायबहादुरके पिता स्वर्गवासी हुए, उस समय रायबहादुर सेठ विश्वेश्वरलालजीकी अवस्था केवल १४ वर्षकी और उनके अनुज सेठ मोतीलाल-जीकी अवस्था पाँच महीनेकी थी। चौदह वर्ष ही की अवस्थामें रायबहादुर अपनी जन्मभूमिसे सुदूर कलकत्ते गये। आपको हिन्दी, संस्कृत और अंगरेज़ीकी शिक्षा घर ही पर मिली।

आपने कलकत्तेमें पहुँचकर व्यवसायकी ओर मन लगाया। थोड़े ही दिनों बाद आपके अनुकरणीय उत्साह और अविश्रान्त परिश्रमपर लक्ष्मीजी प्रसन्न हुईं। देखते-देखते आप कलकत्तेके मारवाड़ी-समाजके नेताओंमें गिने जाने लगे। आप जूट, चीनी, कपड़ा, निमक इत्यादिका व्यवसाय करते हैं और बेंक-टेश्वर हाइड्रालिक प्रेस तथा दौखिन्दरी केनेल बैंकके आप अध्यक्ष हैं। सरकार भी आपकी सार्वजनिक सेवाओंपर आपसे प्रसन्न है और आपको रायबहादुरकी पदवीसे अलंकृत भी कर रखा है। आप हावड़ेके जनरल हास्पिटल तथा गोबराके कोढ़ी-अस्पतालकी कमेटियोंके सदस्य भी हैं। देहलीके दरबारके समय सरकारने आपको Durbar Medal दिया था। आपने हावड़ेमें अना-थोंके लिये अपने पिताके नामपर Janky Das Hospital नामक एक खैराती अस्पताल भी खोल रखा है। आपकी इस प्रकारकी अनेक सार्वजनिक सेवाओंपर प्रसन्न हो हमारे बड़े लाटने आपको Certificate of honour दिया है। इसके अतिरिक्त आप कलकत्तेकी प्रायः सभी मारवाड़ी-संस्थाओंके पोषक हैं। आप मारवाड़ी-स्पोर्टिङ्ग-क्लब तथा सनातन-धर्मावलम्बिनी अग्रवाल-सभाके प्रेसीडेंट हैं। आप ही के हाथसे 'कलकत्ता-समाचार'का प्रथम अङ्क

निकाला गया था और कलकत्तेके हिन्दू-क्लबको भी आपने ही खोला था। कलकत्तेके मारवाड़ी-समाजकी प्रधान सभा मारवाड़ी-एसोसियेशनके भी आप ही प्रेसीडेंट हैं। आप हावड़ेके आनरेरी मजिस्ट्रेट भी हैं। अभी हाल ही में आप कलकत्तेमें श्री भागिरथीजीके तटपर अच्छी लागतसे एक सुन्दर श्राद्ध-घाट बनवा रहे हैं। इसके बन जानेपर सर्वसाधारणको बहुत सुभीता हो जायगा।

कहना न होगा कि रायबहादुर साहब भी श्रीवैष्णव सम्प्रदायमें पूरी निष्ठा रखते हैं। श्रीवैष्णव स्वभाव ही से दयावान् तथा ब्रह्मण्य और भगवत्-भागवत्-कैङ्कर्य-परायण हुआ करते हैं। आप सपरिवार दक्षिण-यात्रा भी कर चुके हैं। आप बड़े ही शान्त-प्रकृत-सम्पन्न, मिलनसार और मधुरभाषी हैं। आपका चरित्र-बल उच्च और विचार गम्भीर हैं। व्यवसाय-सम्बन्धी जटिल विषयोंपर आपकी सम्मति बड़े महत्वकी समझी जाती है। गवर्नमेंटमें आपकी बहुमूल्य सम्मतिका अच्छा आदर है।

हमें आपसे श्रीवैष्णव सम्प्रदायके प्रचार-सम्बन्धी कार्योंमें अनेक प्रकारकी सहायता मिलनेकी आशा है। हम भगवान्से प्रार्थना करते हैं कि वे हमारे रायबहादुर सेठ विश्वेश्वरलालजी हलवासिया एवं उनके अनुज सेठ मोतीलालजी हलवासियाको दीर्घायु करें, जिससे ये दोनों महानुभाव श्रीवैष्णवोपकारी कार्योंमें संलग्न रहें।

दारागंज, प्रयाग,
कार्तिक कृष्णा, ७ मी
सं० १९७२

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा

श्रीमान् सेठ मोतीलाल हलवासिया

॥ श्रीः ॥

विषय-सूची

—**—

—**—

भोगैश्वर्यपराः केचित्केचित्कैवल्यमीप्सवः ।
वयन्तु शृङ्खला लग्ना रामानुजदयानिधे ॥

—ब्रह्मसंहिता

श्रीमते रामानुजाय नमः ।

शेषावतार

श्रीरामानुजाचार्य

प्रथम अध्याय

—**—

श्रीरामानुजाचार्यका जन्म

मद्राससे साढ़े तीन योजन अर्थात् १४ कोस नैऋत्य कोणमें पेरुम्बूदूर नामक गाँव है। संस्कृत भाषामें इसको श्री महाभूतपुरी कहते हैं। वहाँ ब्राह्मणों ही की अधिक बस्ती है। गाँवके बीचमें सुन्दर और विशाल एक विष्णुका मन्दिर है। उस मन्दिरमें आदिकेशव नाम धारण करके त्रिलोक-रक्षक विष्णु, सस्मित-वदन होकर सबपर समान रूपसे कृपा-कटाक्षकी वर्षा करते हुए विराजते हैं। मन्दिरके चौककी दूसरी ओर एक देवगृह वर्त्तमान है। इसमें यतिराज भक्तवीर भक्तवत्सल वेदान्तकमलभास्कर भाष्यकार श्री मद्रामानुजाचार्य हाथ जोड़े भक्त-राजका आसन अधिकार किये हुए हैं। उसके पीछे निर्मल सलिल निस्तरंग एक विशाल सरोवर पवित्र भक्त-हृदयके समान वैकुण्ठ-तुल्य उस समग्र देव-मन्दिरको धारण किये हुए है। इसके अतिरिक्त वहाँकी समस्त प्राकृतिक शोभा चित्तको प्रसन्न करती है। वह स्थान अनेक प्रकारकी वृक्ष-लताओंसे सुशोभित

है, पक्षिकुलके मधुर कलरवसे मानों वह स्थान बोल रहा है, खिले हुए पुष्पोंके सौरभसे वह स्थान सुरभित हो रहा है। शान्ति, मधुरता और सुन्दरताकी वहाँ सीमा नहीं। देखनेसे मालूम होता है कि संसारकी रक्षामें निरन्तर लगे रहनेके कारण परिश्रम दूर करनेके लिये स्वयं भगवान् कमलापति अपने प्रियतम भक्तके साथ विश्राम करनेके लिये आये हैं।

लगभग हज़ार वर्ष पहले आसूरि केशवाचार्य नामक एक कर्मनिष्ठ ब्राह्मण इस गाँवमें रहते थे। उसी समय यामुनाचार्य अथवा आलवन्दार राजसिंहासन छोड़कर और राममिश्र स्वामीजीके शिष्य होकर श्री रंगक्षेत्रमें संन्यासि-वेशमें रहते थे। गुरुको वैकुण्ठ-प्राप्ति होनेपर आलवन्दार ही उस समयकी समस्त वैष्णव-मण्डलीके नेता माने गये। उनका असाधारण वैराग्य, त्याग, पाण्डित्य, नम्रता, कर्मनिष्ठा आदि सभी गुण वैष्णव-मण्डलीके लिये अनुकरणीय हो गये। उनके बनाये सुमधुर स्तोत्रोंको सभी सज्जन कण्ठस्थ और हृदयस्थ करके अपनेको कृतकृत्य मानने लगे। वस्तुतः महात्मा यामुनाचार्यने अपने बनाये स्तोत्रोंमें इस प्रकार भक्ति और प्रीतिके साथ सरल भावसे आत्मनिवेदन किया है, जिसे पढ़कर पाखण्डियोंके हृदयमें भी भक्तिका संचार होता है। चारों ओरसे दलके दल भगवद्भक्तिपरायण वैष्णवगण आ-आकर उनके शिष्य होने लगे और अपनेको भाग्यवान् समझने लगे। उनमें दो-एक श्री यामुनाचार्यजीके समान संन्यासाश्रम ग्रहण करके उन्हींके साथ सर्वदा रहकर अपनेको कृतार्थ मानने लगे।

पेरियातिरुमलैनम्बि यामुनाचार्यके प्रधान शिष्य थे। उनकी दो भगनियाँ थीं। बड़ीका नाम भूमिपेराट्टि भूदेवी अथवा कान्तिमती और छोटीका नाम पेरियापेराट्टि अथवा महादेवी था।

श्री पेरम्बूदूर-निवासी आसूरि केशवाचार्यने कान्तिमतीको ब्याहा था और कनिष्ठा महादेवीका ब्याह मधुरमङ्गलम्ग्राम-निवासी कमलनयन भट्टके साथ हुआ था। दोनों भगनियोंका ब्याह हो जानेपर श्री शैलपूर्ण निश्चिन्त होकर भगवान्का ध्यान करने लगे, और अन्तमें महात्मा यामुनाचार्यके समान सद्गुरु पाकर वृद्धावस्थामें उनके सत्संगसे परमानन्दका उपभोग करने लगे।

आसूरि केशवाचार्य अत्यन्त यज्ञनिष्ठ थे, इस कारण पण्डितोंने उन्हें 'सर्वक्रतु' की उपाधि दी थी। अतः उनका पूरा नाम श्री मदासूरि सर्वक्रतु केशव दीक्षित था। विवाहके अनन्तर दोनों स्त्री-पुरुष बहुत दिनों तक उसी गाँवमें रहे; परन्तु किसी सन्तानके न होनेके कारण केशव दीक्षितका चित्त बहुत उद्विग्न हुआ। अन्तमें यज्ञके द्वारा भगवान्को प्रसन्न करके उनकी कृपासे पुत्र प्राप्त करनेकी इच्छा उनके हृदयमें बलवती हुई।

"यज्ञएवपरोधर्मो भगवत्प्रीतिकारकः।
अभीष्टकर्मधुग् यज्ञस्तस्मात् यज्ञः परागतिः॥"

आदि वाक्योंसे वह आशा हृदयमें और भी बद्धमूल हो गई। समुद्रके किनारे वृन्दारण्यके निवासी श्रीमत्पार्थसारथि भगवान्के समीप जाकर उन्होंने अपना मानसिक भाव निवेदन किया और वहीं यज्ञ करनेका संकल्प किया। तदनुसार वे स्त्रीके साथ वृन्दारण्यमें गये और वहाँ पार्थसारथिके समीपस्थ कुमुद सरोवरके तीरपर यज्ञ करना प्रारम्भ किया। आज हम लोग जिस स्थानको कहते हैं, वह तिरुवल्लिक्केणिका अंगरेजी अपभ्रंश है। पहले जो वृन्दारण्य नामसे प्रसिद्ध था, अब वह सरोवरके नामानुसार टिप्लीकेन कहा जाता है।

यज्ञ समाप्त होनेपर रात्रिमें केशवाचार्य सोए थे। उस समय उन्होंने स्वप्नमें पार्थसारथि भगवान्को देखा। स्वप्नमें भगवान्ने उन्हें सम्बोधित

करके कहा—"सर्वक्रतो ! मैं तुम्हारी सदाचारनिष्ठा और भक्तिसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूँ, तुम किसी प्रकारकी चिन्ता मत करो। मैं ही तुम्हारे पुत्रके रूपमें जन्म ग्रहण करूँगा। मनुष्य दुर्बुद्धिके कारण पूर्वाचार्योंके अभिप्रायको न समझकर स्वयं अपने ही को ईश्वर मानते हैं और अहंकारके वशवर्त्ती होकर कुकर्मपरायण तथा यथेच्छाचारी हो रहे हैं। अतः आचार्यरूपमें बिना मेरे अवतार लिये उनकी कोई गति नहीं है।" इस शुभ स्वप्नसे केशवाचार्य बड़े आनन्दित हुए। उन्होंने यह शुभ समाचार अपनी स्त्रीको सुनाया, और दूसरे दिन प्रातःकाल ही वे स्त्री-सहित घर जानेके लिये वहाँसे प्रस्थित हुए।

इस घटनाके एक वर्षके बाद भाग्यवती कान्तिमतीने सर्वलक्षण-सम्पन्न एक पुत्र उत्पन्न किया। ४११८ कल्पाब्दमें, ९३९ शाकाब्दमें या १०१७ खृष्टाब्दमें, पिंगल नामक संवत्सरमें, आर्द्रा नक्षत्र-युक्त चैत्र मासकी शुक्ल पंचमी तिथि, वृहस्पति वारको कर्कट लग्नमें, हारीत गोत्रीय यजुः शाखाध्यायी भगवान् श्री रामानुजाचार्य तरुण सूर्यके समान अज्ञानान्धकार दूर करनेके लिये सबके सामने उदित हुए। उनके जन्मसे दुर्बुद्धिका नाश हुआ और सद्बुद्धि विकसित हुई, इस कारण "धीर्लब्धा" इस वाक्य द्वारा पण्डितोंने उनका जन्म-काल निर्णय किया है। "अंकस्य वामागतिः" इस नियमके अनुसार उक्त वाक्यमें ध, ल और ध—ये तीन प्रधान अक्षर हैं। कादि नव टादि नव और यादि नव—यह अक्षरमाला मिलकर एकसे नव संख्याका बोधन करती है। टादि नवके मध्यमें ध नवम स्थानीय है, इस कारण उससे नव संख्याका बोध होता है और यदि नवमें ल तृतीय स्थानीय है, इस कारण उससे तीसरी संख्याका बोध होता है। अतएव ध, ल और ध—इन तीन अक्षरोंसे ९३९ शाकाब्द समझा जाता है।

उसी समय कान्तिमतीकी छोटी बहिन महादेवीने भी एक पुत्र उत्पन्न किया। सूतिकागृहसे निकलनेके कुछ दिनोंके बाद वह अपनी बड़ी बहिनके पुत्रको देखनेकी इच्छासे उसके घर आई। दोनों बहिनें परस्पर पुत्रोंको देखकर बड़ी प्रसन्न हुईं। इसी बीचमें इस शुभ समाचारको सुनकर श्री तिरुपतिसे वृद्ध श्री शैलपूर्ण स्वामी नवप्रसूत भागिनेयोंको देखनेके लिये वहाँ आये। बहुत दिनोंपर भाईको देखकर कान्तिमती और महादेवी बड़ी प्रसन्न हुईं। सर्वलक्षण-युक्त दोनों बालकोंको देख वृद्ध भी बहुत प्रसन्न हुए। कान्तिमतीके पुत्रमें अनेक दैवलक्षण देखकर उनको नम्मालवारकी कही हुई बात कि अमुक समयमें पेरुम्बूदूरमें आदि-शेषके अवतार होंगे, स्मरण हो आई। बृहत्पद्मपुराणके तेइसवें अध्याय और श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें कलियुगमें जिस अनन्तदेवकी कथा लिखी है, वह यही बालक ही लक्ष्मणावतार है—इस विषयमें उन्हें कुछ भी सन्देह नहीं रह गया। इसी कारण उन्होंने उस बालकका नाम रखा "रामानुज" और महादेवीके पुत्रका नाम गोविन्द। महादेवीने एक और पुत्र उत्पन्न किया था, जिसका नाम छोटा गोविन्द रखा गया।

आदि कवि महर्षि वाल्मीकिने लिखा है—

"सार्पेजातौत्तु सौमित्री कुलीरेऽभ्युदिते रवौ।"

चैत्र मासके अश्लेषा नक्षत्रमें कर्कट राशिस्थ सूर्यमें लक्ष्मण और शत्रुघ्न उत्पन्न हुए थे। श्रीमद्रामानुजाचार्यका जन्म मास और राशि लक्ष्मण और शत्रुघ्नके जन्मकालसे मिलता है। जब दोनों बालक चार महीनेके हो गये, तब उनकी माताएँ बालकोंको लेकर बाहर निकलीं और उन लोगोंने बालकोंको सूर्यका दर्शन कराया। तदनन्तर यथासमय उनका अन्नप्राशन, कर्णवेध,

चूड़ाकरण, विद्यारम्भ और उपनयन-कर्म सम्पन्न हुआ। बाल्यावस्था ही से रामानुजने अपनी असाधारण बुद्धिशक्तिका परिचय दिया था। अध्यापकके एक बार कहने ही से, चाहे वह कितना ही कठिन पाठ क्यों न हो, वे उसे समझ लेते थे। इस कारण समस्त अध्यापक उनपर अधिक स्नेह रखते थे।

उनकी बुद्धि केवल बाहरी बातोंमें प्रखर थी—ऐसा नहीं था, उनकी बुद्धि दिग्दर्शक-यन्त्रकी सूईके समान दक्षिण-उत्तर रूप धर्म और अर्थ दोनोंको समभावसे बतला दिया करती थी। धर्मका अनुशीलन और धार्मिकोंका सहवास उन्हें अत्यन्त प्रिय था। समय पाते ही वे साधु-संगके लिए उत्कण्ठित हो जाते थे।

उसी समय कांचीपूर्ण स्वामी नामक एक परम भागवत पूविरुद्बल्लिमें रहते थे और वे वहाँके प्रधान रत्न समझे जाते थे। वे प्रतिदिन वहाँसे देवपूजा करनेके अर्थ कांचीसे जाते थे। श्री पेरुम्बूदूर इन दोनों स्थानोंके बीचमें था। अतः वे प्रतिदिन श्री रामानुजाचार्यके मकानके पाससे होकर आते जाते थे। यद्यपि वे तीसरी जातिके थे, तथापि उनका प्रगाढ़ ईश्वरानुराग देखकर ब्राह्मण भी उनकी उचित श्रद्धा और भक्ति करते थे। एक दिन सन्ध्याके समय श्री रामानुज अध्यापकके घरसे आते थे, मार्गमें सहसा श्री कांचीपूर्णसे भेंट हो गई। भागवतोत्तमके मुखकी दिव्यकान्ति देखकर श्री रामानुजका चित्त उधर आकृष्ट हुआ। उन्होंने अति विनीत भावसे उस रात्रिको अपने घर अन्न-ग्रहण करनेकी प्रार्थना की। श्री कांचीपूर्ण स्वामीने भी बालककी दिव्यकान्ति और भगवल्लक्षण देखकर आमन्त्रण स्वीकार कर लिया। इससे श्री रामानुज बड़े प्रसन्न हुए। उनको बड़े उत्साह और प्रीतिसे श्री रामानुजने भोजन कराया। तदनन्तर वे उनके पैर दबानेके लिए उद्यत

हुए ; परन्तु अतिथिने इसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा—“मैं नीच वर्ण हूँ, आप ब्राह्मण और परम वैष्णव हैं। मुझे चाहिये कि मैं आपकी सेवा करूँ, परन्तु आप मेरी ही सेवाके लिए उद्यत होते हैं, यह उचित नहीं है।” इससे दुःखित होकर श्री रामानुजने कहा—“मेरा भाग्य ही मन्द है, इसी कारण आप जैसे महात्माका सेवाधिकार नहीं मिला। महाशय! उपवीत धारण करने ही से क्या कोई ब्राह्मण होता है? जो हरिभक्त हैं, वे ही सच्चे ब्राह्मण हैं। देखिये, तिरुप्पान आल्वार चाण्डाल थे, परन्तु वे ब्राह्मणोंके पूज्य हो गये।”

बालककी इस प्रकारकी भक्ति देखकर श्री कांचीपूर्ण स्वामी उस बालकको मनुष्य नहीं समझ सके। अनेक प्रकारके वार्तालापसे रात्रिको विश्राम करके दूसरे दिन प्रातःकाल श्री कांचीपूर्ण अपने घर गये। उसी दिनसे दोनोंमें परस्पर प्रेम-बन्धन चिर-दिनके लिए स्थापित हुआ।

पूर्वाचार्योंने श्री रामानुजको लक्ष्मणावतार लिखा है। इसमें उन्होंने पुराणोंके अनेक प्रमाण दिये हैं, यह बात पहले दिखलाई गई है। सौमित्रिके स्वभावके साथ केशवनन्दनके स्वभावकी तुलना करनेसे हम लोग दोनोंमें अधिक सादृश्य देखते हैं। लक्ष्मीवर्द्धन लक्ष्मणकी कर्तव्यपरायणता, सत्यनिष्ठा, रामभक्ति, जितेन्द्रियता और धर्मपरायणता संसारमें अतुलनीय है। उनके हृदयके अधिष्ठाता देव केवल श्रीराम ही थे। रामरसके अतिरिक्त दूसरे रसमें लक्ष्मणकी आस्था ही नहीं थी। सुतरां पार्थिव प्रलोभनोंसे वे अलग ही रहेंगे, इसमें आश्चर्य ही क्या है। हम लोग इसके अनेक प्रमाण “वाल्मीकिगिरि सम्भूता रामसागरगामिनी” रामायणी गंगामें अवगाहन करनेसे प्राप्त करते हैं। जिस समय मायामृगने रमणी-कुलकी गौरव-स्वरूपा जनकनन्दिनीको

मोहित करके सर्वकल्याण-गुण-समन्वित भगवान् श्रीरामचन्द्रको मोहित किया था, उस समय श्रीमान् लक्ष्मणने अपने हृदयके अभीष्टदेव श्रीरामचन्द्रको इस प्रकार सावधान किया था—

"तमेवैनमहं मन्ये मारीचं राक्षसं मृगम् ।
चरन्तो मृगयां हृष्टाः पापेनोपाधिनावने: ॥
अनेन निहता राम राजानः पापरूपिणा ।
अस्य मायाविदोमाया मृगंरूपमिदं कृतम् ॥
भानुमत् पुरुषव्याघ्र गन्धर्वपुरसन्निभम् ।
मृगोह्येवंविधोरत्न विचित्रो नास्तिराघव ॥
जगत्यां जगतीनाथ मायैषाहि न संशयः ।"

हे पुरुषव्याघ्र ! मैं समझता हूँ कि यह मृग मारीच राक्षसके अतिरिक्त और कोई नहीं है। राजा लोग प्रसन्नतासे जब वनमें मृगया खेलने जाते हैं, तब पापी दुष्ट यह निशाचर मायासे अनेक रूप धारण करके उन्हें मोहित करके विनष्ट कर देता है। यह जो सामने गन्धर्व नगरके समान सुन्दर मायामृग दीख पड़ता है, यह मायावीकी मायासे भिन्न और कुछ नहीं है। हे जगतीपते श्रीरामचन्द्र ! पृथवीमें ऐसा कांचन मृग कहीं नहीं देखा गया है, अतः यह माया है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

सीताके साथ श्रीरामचन्द्रकी सेवा करना ही लक्ष्मणके जीवनका प्रधान उद्देश्य था। रावण-वधके अनन्तर देवताओंके साथ महाराज दशरथ आकर लक्ष्मणको आशीर्वाद दे तथा उनकी प्रशंसा करके कहते हैं—

"अवाप्तं धर्मचरणं यशश्च विपुलंत्वया ।
एवं शुश्रुषताव्यग्रं वैदेह्या सह सीतया ॥"

हे वत्स ! वैदेही सीताके साथ श्रीरामचन्द्रकी अव्यग्र चित्तसे सेवा करते हुए तुम्हें धर्म और विपुल यश प्राप्त हुआ है ।

श्री रामानुजके जीवनका भी मुख्य उद्देश्य श्री नारायणकी सेवा करना था । जिस समय तामसिक समाजके नेताओंने अहंकारसे उन्मत्त होकर—रावण द्वारा सीता-हरणके समान—मानव-हृदयसे भगवद्भक्तिका अपहरण किया था, उस समय श्री रामानुज सच्चे रामानुजके समान सीतारूप भगवद्भक्तिके उद्धारके लिये आजीवन पाखण्डियोंके साथ युद्ध करके अन्तमें सफल मनोरथ हुए थे । उन्होंने श्रीनारायणके अंकमें स्त्रीको बैठाकर स्त्रीहीन भारतमें पुनः सौभाग्यलक्ष्मी प्रकाशित कर दी । स्त्रीके साथ श्रीनारायणका नित्य सम्बन्ध स्थापित करके उन्होंने महर्षि वाल्मीकिके अभिप्राय ही को व्यक्त किया है । आदि कविने वन्दीके मुखसे गवाया है—

"श्रीश्च धर्मश्च काकुत्स्थ त्वयि नित्यं प्रतिष्ठितौ ।"

हे काकुत्स्थ ! धर्म और श्री तुममें नित्य वर्त्तमान रहते हैं । श्री सम्प्रदायके प्रवर्त्तक महात्माने असाधारण बुद्धि-बलसे और अनवद्य युक्तिके सहारे इसी तत्वको स्पष्टरूपसे समझाया है । लक्ष्मण जिस प्रकार मूर्त्तिमान् धर्म-स्वरूप थे, उसी प्रकार श्री रामानुज धर्मके प्राण थे, यह बात उनकी जीवन-घटनाओंपर विचार करनेसे स्पष्ट ही विदित होती है । लक्ष्मणके समान श्री रामानुज भी नीति और पार्थिव प्रलोभनोंसे दूर थे ।

—**—

द्वितीय अध्याय

यादवप्रकाश

सर्वलक्षण-सम्पन्न श्री रामानुजने सोलह वर्षकी अवस्थामें पैर रखा है, यह देखकर उनके पिता आसूरि केशवाचार्यने पुत्रका ब्याह निश्चित किया। शीघ्र ही एक सुन्दरी कन्याके साथ उनका ब्याह हुआ। पिता-माता, आत्मीय-स्वजन-सम्बन्धियोंके आनन्दकी सीमा नहीं रही। दीन-दरिद्र भोजन पाकर बड़े आनन्दित हुए। एक सप्ताह तक आनन्दकी धारा बहती रही। नई बहूको देखकर देवी कान्तिमती और उनके पति बड़े आह्लादित हुए। महीनों इसी प्रकार सांसारिक आनन्दमें बीता। इसी समय विधाताके पुराने नियमके अनुसार सुखमें दुःखकी रेखा दीख पड़ी। वृद्ध केशवाचार्य सांघातिक पीड़ासे पीड़ित हुए और शीघ्र ही वे इस धराधामसे उठ गये। आचार्य-परिवार मेघाच्छन्न पूर्णिमा रजनीके समान शोकसे म्लान हो गया। विपुल आनन्दके बीचमें यह आकस्मिक दुःख अतिशय तीव्र हो उठा। कविकुलगुरु वाल्मीकिकी मर्म जलानेवाली क्रौंचवधूके समान कान्तिमती अतिशय अधीर हो गईं। पितृहीन श्री रामानुज कियत्काल-पर्यन्त शोकसे अधीर हो गये। धीरे-धीरे बुद्धि-बलसे वे प्रकृतिस्थ होनेका प्रयत्न करने लगे। वे स्वयं प्रकृतिस्थ होकर माताको भी सान्त्वना देने लगे।

शीघ्र ही बन्धुओंकी सहायतासे पिताकी अन्त्येष्टि-क्रियासे वे निवृत्त हुए।

यथासमय श्राद्ध आदि क्रिया सम्पन्न हुई। तदनन्तर कुछ दिनों तक वे वहीं रहे; परन्तु अब वह स्थान उनको रुचिकर प्रतीत नहीं होता था, अतः उन्होंने कांचीपुरमें जाकर रहनेका विचार निश्चित किया। तदनुसार उन्होंने कांचीपुमें रहनेको मकान बनवाया, और वहाँ सपरिवार जाकर वे रहने लगे। अधिक समय बीतनेसे शोकावेग भी घट गया।

उस समय कांचीपुरमें यादवप्रकाश नामक एक विख्यात अद्वैतवादी अध्यापक अनेक शिष्योंके साथ रहते थे। उनके पाण्डित्यपर सभी मुग्ध हो गये थे। अधिक ज्ञान-पिपासा होनेके कारण श्री रामानुज भी उनके शिष्य हो गये। नवीन शिष्यकी प्रतिभा देखकर यादवप्रकाश बड़े ही प्रसन्न हुए। थोड़े ही दिनोंमें श्री रामानुज यादवप्रकाशके सर्वप्रधान अत्यन्त प्रिय शिष्य हो गये।

परन्तु यह प्रीति बहुत दिनों तक रह न सकी। यादवप्रकाश एक अद्वितीय बुद्धिमान् मनुष्य थे। आज भी उनका कहा हुआ अद्वैत सिद्धान्त "यादवीय सिद्धान्त" के नामसे प्रसिद्ध है। वे एक प्रकारसे शुद्धाद्वैतवादी थे; परन्तु वे ईश्वरकी साकार मूर्त्ति नहीं मानते थे। जगत् ईश्वरकी परिवर्त्तनशील नित्यनश्वर विराट् मूर्ति है। इसी विराट् मूर्त्तिके पश्चात् जो देश-काल-निमित्तातीत अक्षर सच्चिदानन्द सत्ता है, वही स्वराट् सत्ता है, वही उपादेय और ज्ञेय है। पूज्यपाद शंकराचार्यके समान वे विराट्में मायाका अथवा रज्जुमें सर्पका विवर्त, एकमें अन्यज्ञान, ऐसा नहीं कहते। जगत् उनकी दृष्टिसे मरीचिकाके समान मिथ्या और सब प्रकारसे अकिंचितकर प्रतिभात नहीं होता। यह ईश्वर ही का एक रूप है, जो नित्य और परिवर्त्तन-शील है। सतत चंचल होनेके कारण हेय है और सतत स्थिर है। इस

कारण स्वराट् उपादेय है। विराट्दर्शी आत्मा जीव और स्वराट् आत्मा ही ब्रह्म है।

भक्तिमय मूर्त्ति श्री रामानुज भगवद्दास्यकी दूसरी मूर्त्ति थे। इस कारण यादवीय सिद्धान्त कभी वे पसन्द नहीं कर सकते थे। परतु गुरुका गौरव रखनेके लिये उन्होंने कभी यादवकी शिक्षाका दोष दिखानेका साहस नहीं किया। इच्छा रहनेपर भी वे गुरुके सिद्धान्तके दोष दिखानेका साहस नहीं कर सके थे।

एक दिन प्रातःकालका पाठ समाप्त होनेपर शिष्यवर्ग मध्याह्नकी क्रिया करनेके लिये अपने-अपने घर चले गये। उस समय यादवप्रकाशने अपने प्रियतम शिष्य श्री रामानुजको तेल लगानेके लिये कहा। उस समय भी एक छात्र पढ़ रहा था। वह छान्दोग्योपनिषत् पढ़ता था। उसके प्रथमाध्यायस्थ षष्ठ खण्डके सप्तम मन्त्रके पूर्वांशमें जो "कप्यासं" शब्द है, उसका अर्थ वह शिष्य नहीं समझ सकता था। उस मन्त्रका अंश ऐसा है—"तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी"। यादवप्रकाशने "कप्यासं" शब्दका अर्थ वानरके पृष्ठका अन्तिम भाग अथवा वानरका अपान देश करके उस मन्त्रांशकी ऐसी व्याख्या की—"उस सुवर्ण वर्ण पुरुषकी दोनों आँखें वानरके पृष्ठके अन्तिम भागके समान लाल और पद्मतुल्य हैं।" इस विसदृश और हीनोपमायुक्त व्याख्याको सुनकर तेल लगाते हुए श्री रामानुजका स्वभाव-कोमल और भक्ति-मधुर हृदय पिघल गया और अश्रुका आकार धारण करके आँखोंके कोनोंसे निकलकर यादवप्रकाशके शरीरपर पड़ा। जलते हुए अंगारके तुल्य अश्रुधारा पड़नेसे यादवप्रकाश चकित होकर ऊपर देखने लगे। उस समय उन्हें मालूम हुआ, यह अंगार नहीं, किन्तु उनके प्रिय शिष्य श्रीरामानुजकी अश्रुधारा

है। उन्होंने विस्मित होकर श्रीरामानुजसे इसका कारण पूछा, तो उत्तर मिला—"भगवान्, आपके समान महानुभावसे इस प्रकारके अर्थ सुनकर मैं बड़ा मर्माहत हुआ हूँ। सर्वकल्याणमय निखिल सौन्दर्योंका आकार, सच्चिदानन्दमय विग्रह परात्पर भगवानके मुखके सहित वानरके अपान देशकी तुलना करना कितना अन्याय और पापजनक है, सो मैं एक मुखसे क्या कहूँ। आपके समान बुद्धिमानके मुखसे ऐसा अनर्थ सुननेकी आशा नहीं थी। यादवप्रकाशने कहा—"वत्स! मैं भी तुम्हारी दाम्भिकतासे अधिक दुःखित हुआ हूँ। अच्छा, इसका इससे अधिक उत्तम अर्थ तुम कर सकते हो?" श्री रामानुजने कहा—"आपके आशीर्वादसे सभी सम्भव हो सकता है।" गुरुने ईषत् घृणासूचक हास्य करके कहा—"ठीक है, ठीक है, तुम अपना नया अर्थ कहो। देखते हैं, तुम शंकराचार्यके सिरपर पैर रखना चाहते हो।" श्री रामानुजने अति विनयसे कहा—"भगवन्, आपके आशीर्वादसे सभी हो सकता है। 'कप्यासं' शब्दका अर्थ वानरका अपान मार्ग नहीं है, किन्तु 'कं जलं पिवतीत कपिः सूर्यः एवं विकसनाथक अस् धातुसे आस' शब्द सिद्ध होता है। इससे 'कप्यासं' शब्दका अर्थ हुआ 'सूर्य विकसितं'। इस प्रकार मन्त्रांशका अर्थ हुआ—उस सुवर्ण वर्ण सवितृमण्डल मध्यवर्त्ती पुरुषकी आँखें सूर्याविकसित पद्मके समान शोभाशालिनी हैं।"

यह अर्थ सुनकर यादवने कहा—"यह मुख्यार्थ नहीं है, किन्तु गौणार्थ है। जो हो, अर्थ करनेकी तुम्हारी शक्ति अच्छी है।"

इसके बाद अध्यापकने श्री रामानुजको महाद्वैतवादी एक भगवद्भक्त समझा और इसी कारण उनकी प्रीति भी कुछ कम हो गई।

एक दिन तैत्तिरीय उपनिषद्के "सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म" इस मन्त्रकी जब

यादवप्रकाशने ब्रह्मको असत्यव्यावृत्त, अज्ञानव्यावृत्त और परिच्छिन्नव्यावृत्त कहकर व्याख्या की, तब श्री रामानुज उसका प्रतिवाद करनेके लिये उद्यत हुए और उन्होंने कहा--"ब्रह्म सत्य-स्वरूप हैं, ज्ञान-स्वरूप हैं और वे अनन्त हैं, अर्थात् वे सत्यत्व, ज्ञानत्व और अनन्तत्व आदि गुणोंसे गुणी हैं। ये गुण उनके स्वरूप-मात्र नहीं हो सकते। ये सब भगवान्के गुण हैं।" इस व्याख्याको सुनकर अध्यापक गरम तेलमें भुने हुए बैंगनके समान लहक उठे। उन्होंने कहा--"अरे धृष्ट बालक! तू यदि हमारी व्याख्या नहीं सुनना चाहता, तो व्यर्थ यहाँ क्यों आया है? अपने घर जाकर पाठशालामें क्यों नहीं पढ़ता?" तदनन्तर पुनः अध्यापकने स्थिर होकर कहा--"तेरी व्याख्या शंकराचार्यके मतानुकूल नहीं है और अन्य किसी पूर्वाचार्यके भी मतानुकूल नहीं है। अतः अबसे फिर ऐसी धृष्टता न करना।" श्री रामानुज स्वभाव ही से अधिक नम्र और गुरुभक्त थे। पाठके समय वे मौन धारण करके रहने लगे। प्रतिवाद करनेकी उनकी बिलकुल इच्छा नहीं थी; परन्तु करते क्या? जब अध्यापककी व्याख्यामें वे सत्यका अपलाप होते देखते थे, तब उनका हृदय काँप जाता था और इच्छा न रहनेपर भी उनको उसका प्रतिवाद करना ही पड़ता था। यादव यद्यपि उनके प्रतिवादोंको अपनी शिष्यमण्डलीमें निःसार ठहरा देते थे, तथापि वे धीरे-धीरे श्री रामानुजसे भय करने लगे। उन्होंने सोचा--सम्भव है, यह बालक समय पाकर अद्वैत मतका खण्डन करके द्वैत मतकी स्थापना करे। किस प्रकार इससे छुटकारा मिलेगा। सनातन अद्वैत मतकी रक्षाके लिये इसका प्राणसंहार करना भी उचित है। यादवप्रकाशने अद्वैत मतपर अधिक भक्तिके कारण ऐसा पाशव सिद्धान्त स्थिर नहीं किया, किन्तु प्रबल ईर्ष्या ही इसका कारण है। कवि कहता है--

"प्रकृतिः खलु सा महीयसां सहते नान्य समुन्नतिं यया ।
अनहुङ्कुरुते घनध्वनिं नहिगोमायूरुतानि केशरी ।"'

दूसरोंकी उन्नति सहना ही महात्माओंका स्वभाव है, क्योंकि सिंह मेघ गर्जन ही को सुनकर नाद करता है, शृगालके शब्दको सुनकर नहीं। यह लक्षण प्रकृत महात्माओंका नहीं है। वे महात्मा "तुल्य निन्दास्तुतिर्मौनिसन्तुष्टो येन केन चित्" होते हैं। उनका न तो कोई शत्रु है और न कोई मित्र। वे सबका कल्याण ही चाहते हैं। वे नित्य सन्तुष्ट और सर्वतः पूर्ण होते हैं। कविने लौकिक महात्माओंका लक्षण बतलाया है। जिसको हम लोग "बड़ा आदमी" कहते हैं, वे तमोगुणसे मोहित होकर "कोऽन्योऽस्ति सदृशो मम" समझते हैं। यादवप्रकाश भी ऐसे ही बड़े आदमी थे। अतः ईर्ष्याके वशवर्त्ती उनका हृदय श्री रामानुजके वधकी कामना करेगा, इसमें आश्चर्य क्या है? यद्यपि असाधारण बुद्धिकी सहायतासे उन्होंने वेदान्तके कठिन तर्कोंको अधीन कर लिया था, यद्यपि वे "ब्रह्म ही सत्य है और जगत् मिथ्या है" इस तत्वको सबके सामने स्पष्टरूपसे प्रमाणित कर सकते थे, यद्यपि उनकी कीर्त्ति कांचीपुरीमें व्याप्त हो गई थी और यद्यपि उनकी शिष्यमण्डली उन्हें शंकरावतार समझती थी, तथापि साधनहीन होनेके कारण उनका ज्ञान केवल वाचिक था। वे वासनाओंकी दासतासे अपना उद्धार नहीं कर सकते थे।

एक दिन एकान्तमें यादवने अपने शिष्योंको बुलाकर कहा--"देखो तुम लोग तो हमारी व्याख्यामें किसी प्रकारके दोष नहीं देखते ; परन्तु वह धृष्ट रामानुज जब देखो, तभी हमारी व्याख्यामें दोष दिखाया करता है। बुद्धिमान् होनेसे क्या हुआ, उसका मन द्वैतरूप पाखण्डसे परिपूर्ण है। इस पाखण्डसे बचनेका उपाय क्या है?" यह सुनकर एक शिष्य बोल उठा, "उसको

महाराज अपने यहाँ आने न दीजिये।" इसी समय एक दूसरा शिष्य बोल उठा, "इससे क्या होगा? जिसका डर है, उसका तो कोई उपाय हुआ ही नहीं; अपने यहाँ न आने देनेसे रामानुज एक पाठशाला खोलकर द्वैत मतका प्रचार करेगा। क्या तुमने सुना नहीं कि 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इसकी एक बृहत् व्याख्याकर रामानुजने अद्वैत मतका खण्डन किया है?" सचमुच श्री रामानुजने "सत्य ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" की एक बृहत् व्याख्या की थी, जिससे पण्डितोंमें उनका बड़ा आदर होने लगा था। कुछ देरके वादानुवादके पश्चात् यह स्थिर हुआ कि श्री रामानुजके वधके अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं है। इसके निश्चत होनेपर किस प्रकार यह काम अनायास और बिना किसी के जाने सिद्ध होगा, इस बातकी मीमांसा होने लगी। अन्तमें यादवने कहा—"चलो, हम लोग गंगास्नानसे पाप दूर करनेके लिये तीर्थयात्राको चलें। तुम सब मिलकर यह बात श्री रामानुजको जना दो, और वह भी तीर्थयात्रामें हम लोगोंके साथ चले, इसके लिये प्रयत्न करो। क्योंकि तीर्थ-यात्राका और कुछ उद्देश्य नहीं है, केवल उस पाखण्डीका नाश करना ही है। मार्गमें उसका वध करके गंगास्नानके द्वारा हम लोग ब्रह्महत्याका दोष भी छुड़ा लेंगे और अद्वैत मतका कण्टक भी सदाके लिये उखड़ जायगा।

शिष्यगण अध्यापकका ऐसा साधूक्तिपूर्ण परामर्श सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और वे श्री रामानुजको तीर्थयात्राका प्रलोभन देनेको चले।

पहले लिखा गया है कि गोविन्द नामक श्री रामानुजका एक मौसेरा भाई था। वह श्री रामानुजको अपने प्राणोंसे भी अधिक समझता था। पेरुम्बूदूरको छोड़कर आचार्य-परिवारने जिस समय काञ्चीपुरीमें वास किया, उसी समय गोविन्द भी उनके साथ आकर रहने लगा था। श्री रामानुज और गोविन्द दोनों

ही सम अवस्थाके थे। अतः श्री रामानुजने जिस समय यादवप्रकाशका शिष्यत्व ग्रहण किया, समय गोविन्द भी उनका शिष्य बना। दोनों प्रायः एक ही साथ पढ़ते थे और साथ ही गुरुगृहसे लौटते थे। यादवके शिष्योंने श्रीरामानुजको गङ्गास्नान करनेके लिये उद्यत कराया, अतः गोविन्द भी बड़े आग्रहसे उनके साथ जानेके लिए उद्यत हुआ।

शुभ दिन और शुभ मुहूर्तमें यादवप्रकाशके साथ उनकी शिष्यमण्डली तीर्थयात्रा करनेकी इच्छासे आर्यावर्तकी ओर प्रस्थित हुई। पुत्र-विरह यद्यपि असह्य था, तथापि धर्मशीला कान्तिमतीने अपने पुत्रके इस सत्कर्मानुष्ठानमें बाधा देना उचित नहीं समझा। कतिपय दिनोंके अनन्तर शिष्यमण्डलीके साथ यादव विन्ध्याचलके समीपस्थ गोंडारण्यमें उपस्थित हुए। सरलचेता श्री रामानुज इस भयङ्कर षड्यन्त्रका विन्दुविसर्ग भी नहीं जानते थे; परन्तु गोविन्दको इस बातकी खबर मिल गई। पवित्र मनुष्य सभीको पवित्र ही समझते हैं। एक दिन श्री रामानुज और गोविन्द दोनों रास्तेके पासके किसी तालाबपर पैर धोने गये थे। उसी समय एकान्त पाकर गोविन्दने श्री रामानुजसे सब बातें कह दीं और पिशाच-स्वभाव इन नराधमोंने तीर्थयात्राके व्याजसे उनको मारनेके लिये सङ्कल्प किया है, यह भी गोविन्दने उन्हें समझाया तथा कहा—"ये राक्षस तुम्हें मार डालेंगे, अतः तुम यहाँसे लौटकर कहीं छिप रहो।" यह कहकर गोविन्द उनके अन्य शिष्योंके साथ मिल गया। यादवप्रकाशने श्री रामानुजको ढुँढ़वाकर देखा कि वे उस शिष्यमण्डलीमें नहीं हैं, तब उन्होंने उनको ढूँढ़नेके लिये चारों ओर मनुष्य भेजे; परन्तु उस विजन वृक्षसमाकीर्ण वनमें श्री रामानुजका कहीं पता नहीं लगा। यादवके शिष्योंने उनका नामोच्चारण करके ज़ोर-ज़ोरसे पुकारा; परन्तु कहींसे कुछ भी उत्तर नहीं आया। अन्तमें श्री रामानुजको किसी

बनैले जन्तुने मार डाला है, यह समझकर सभी प्रसन्न हुए। गोविन्द उनका आत्मीय था, इस कारण उन लोगोंने केवल बाहरसे थोड़ा दुःख प्रकाशित किया। तत्वज्ञानके उपदेश द्वारा यादव शिष्यमण्डलीको जीवनकी निःसारता समझाने लगे और कोई किसीका नहीं है, यह कहकर गोविन्दको ढाढ़स बँधाने लगे। मत्सरता मनुष्योंको पशुसे भी अधम बना देती है, इसका उदाहरण अध्यापक यादवप्रकाशसे बढ़कर दूसरा कौन हो सकता है।

तृतीय अध्याय

व्याध-दम्पती

गोविन्दसे पूर्वोक्त कलेजा कपानेवाली भयङ्कर अशुभ बात सुनकर श्री रामानुज थोड़ी देरके लिये किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। उनकी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। थोड़ी देर बाद उन्होंने देखा, उनका प्रिय मित्र गोविन्द भी उन्हें छोड़कर दौड़ा हुआ यादवकी शिष्यमण्डलीमें मिलनेके लिये जा रहा है। उस समय दिन बाकी था। अट्ठारह वर्षका युवक उस निर्जन वनमें सहायहीन, वान्धवहीन होकर क्या करता? उन्होंने सोचा, गोविन्दको बुलाऊँ; पुनः सोचा कि ऐसा करनेसे यादवके अन्य शिष्य भी जान लेंगे। श्री रामानुजको छोड़कर गोविन्दके जानेका भी यही कारण था। धीरे-धीरे गोविन्द भी वृक्षोंकी ओटमें छिप गया। उसी समय एक अलौकिक बलसे उनकी इन्द्रियाँ बलवती हो गईं और भीतरसे मानो कोई कहने लगा, डर क्या है, नारायण रक्षक हैं। बहुत शीघ्र राक्षस-स्वभाव सहपाठियोंसे रक्षा पानेके लिये मार्ग छोड़कर श्रीरामानुज सघन वनमें घुसे। वे बराबर दोपहर तक चलते ही गये। एक बार भी फिरकर उन्होंने पीछेकी ओर न देखा। उन्हें मालूम पड़ा, कोई पीछेसे बड़े ज़ोरसे उन्हें पुकार रहा है। पुकार सुनकर वे और भी ज़ोरसे आगेकी ओर बढ़े। अन्तमें भूख-प्यास और थकावटके कारण आगे नहीं बढ़ सके और वहीं एक

वृक्षके नीचे बैठ गये। उनकी बैठनेकी भी शक्ति जाती रही थी। इस कारण वे वहीं सो गये और सोते ही उन्हें निद्रा आ गई। कुछ देरके लिये उनका संसारके दुःख-सुखसे पीछा छुटा। उठकर उन्होंने देखा कि सूर्यदेव अस्ताचल की ओर जा रहे हैं, दिन बहुत ढल चुका है ; परन्तु न मालूम उनकी भूख-प्यास कहाँ चली गई। अपनेको अधिक बलवान् और स्वस्थ देखकर वे त्रिता-पहारी भगवान्‌को अनेक धन्यवाद देने लगे। हाथ-मुँह धोकर किधर जायँ, वे यही सोच रहे थे कि उनके सामने एक व्याध-दम्पती दीख पड़े। उनके समीप जाकर व्याधकी स्त्रीने पूछा—"बेटा, रास्ता भूलकर तुम कहाँ इस वीरान जङ्गलमें आ पड़े हो, तुम ब्राह्मण हो, तुम्हारा घर कहाँ है?" श्री रामानुजने कहा—"हमारा घर यहाँसे बहुत दूर है। दक्षिण देशकी काञ्चीपुरीका नाम सुना है, वहीं मेरा घर है।" यह सुनकर व्याधने कहा—"इस चोर-डकैतोंके भयङ्कर वनमें तुम कैसे आये? यहाँ दिनमें भी आनेका साहस कोई नहीं करता। इसके अतिरिक्त यहाँ हिंस्र जन्तु भी निर्भय होकर विचरण करते हैं। हम काञ्चीपुरी जानते हैं। हम लोग भी उधर ही जा रहे हैं। तुमको असहाय देख-कर तुम्हारा पता पूछनेके लिये इधर चले आये हैं।" श्री रामानुजने कहा—"तुम लोग रहनेवाले कहाँके हो, और काञ्चीपुरी क्यों जाते हो?" व्याधने कहा—"हम लोग सिद्धाश्रमके रहनेवाले हैं। समस्त जीवन व्याध-व्यवसायसे हमने बिताया है। अब पारलौकिक कल्याणके लिये तीर्थ-दर्शनके लिये हम और हमारी यह स्त्री दोनों निकले हैं। काञ्ची होकर हम लोग सेतु जायँगे। अच्छा हुआ, तुम्हारे जैसे सत्पुरुषका सङ्ग हुआ है। मालूम पड़ता है, तुम रास्ता भूल गये हो। खैर, कुछ डरकी बात नहीं है। जगत्पालक परमात्माने तुम्हारी रक्षाके लिये ही मानों हम लोगोंको यहाँ भेजा है।" उस व्याधका भयङ्कर रूप देखकर श्रीरामा-

नुज पहले तो कुछ डर गये थे ; परन्तु उस व्याधके मुखपर एक प्रकारकी स्नेह-युक्त गम्भीरतासे, उसकी मधुर और मनोहर बातोंसे तथा उसकी स्त्रीके सरल सम्भाषणसे उनके हृदयके सभी संशय दूर हो गए और वे उनके साथ चलनेके लिए उद्यत हो गए। उस समय अधिक दिन नहीं रहा। व्याधने कहा – "चलो, जल्दी-जल्दी हम लोग इस वनको पार कर दें।" थोड़ी देरके बाद दोनों वन पार कर एक स्थानपर पहुँचे। लकड़ी लाकर व्याधने वहाँ आग जला दी और उसीके पास थोड़ी भूमि समतल करके उसपर श्री रामानुजको विश्राम करनेके लिए कहा तथा वह स्वयं भी दूसरी ओर अपनी स्त्रीके साथ विश्राम करने लगा। व्याधकी स्त्रीने अपने पतिको सम्बोधित करके कहा—"मुझे बड़ी प्यास लगी है। यहाँ कहीं जल मिलेगा, इसका पता लग सकता तो बड़ी अच्छी बात होती।" व्याधने कहा—"इस समय रात हो गई है। इस समय इस स्थानको छोड़ना उचित नहीं है। यहाँसे थोड़ी दूरपर एक बावड़ी है, कल प्रातःकाल ही इसीके निर्मल जलसे प्यास बुझाना।" व्याधकी स्त्री अच्छा कहकर सो गई।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही उठ और प्रातःकृत्य करके श्री रामानुज व्याधके साथ चले। थोड़ी देर चलनेपर वे उस बावड़ीके पास पहुँचे। श्री रामानुजने हाथ-पैर धोकर जल पीया। एक अञ्जली जल ऊपर लाकर व्याधकी स्त्रीको पिलाया, परन्तु तो भी उसकी प्यास नहीं गई, अतः चौथी बार जल लेनेके लिए वे फिर गए। जब वे ऊपर आए, तब न तो व्याध ही वहाँ था और न उसकी स्त्री ही। इधर-उधर उन्होंने देखा, परन्तु उनका कहीं भी पता नहीं लगा। पलक झपते ही न मालूम वे कहाँ अदृश्य हो गए। इसका कारण श्री रामानुज कुछ भी स्थिर नहीं कर सके। उन्होंने सोचा, ये देवता थे, मनुष्य नहीं। लक्ष्मीनारा-यणने ही व्याध-दम्पतीका रूप धारण करके हमारी रक्षा की है। वहाँसे थोड़ी दूर

पर मन्दिरका शिखर तथा अनेक बड़े-बड़े मकान देख उन्होंने निश्चित किया कि यह कोई नगर है। उसी मार्गसे एक मनुष्य जा रहा था। श्री रामानुजने उससे पूछा—"भाई, इस नगरका नाम क्या है?" पथिकने विस्मित होकर उनकी ओर देखा और कहा—"तुम क्या आकाशसे आते हो, प्रसिद्ध काञ्चीपुरीका नाम तुम नहीं जानते? तुम्हारे आकारसे तो मालूम पड़ता है कि तुम इसी देशके वासी हो, परन्तु बात विदेशीके समान कर रहे हो। तुम तो महात्मा यादवप्रकाशके शिष्य हो न? मैंने तुमको बहुत बार इस काञ्चीपुरीमें देखा है। यह जो बावड़ी तुम देख रहे हो, जिसके जलसे तुमने अभी हाथ-मुँह धोये हैं, सम्भवतः इसकी बात तुम्हें मालूम न हो। इसका नाम शालकूप है। इसके जलसे तीनों ताप नष्ट होते हैं। इसी कारण बड़ी-बड़ी दूरके आदमी इसका जल पीनेके लिए यहाँ आते हैं।" यह कहकर पथिक चला गया। निद्रासे उठे हुएके समान श्री रामानुज कुछ भी ठीक नहीं कर सके। वे ठिठककर खड़े रह गये। इसके पश्चात् ही व्याध-दम्पतीका स्मरण हो आनेसे उनके मनकी जड़ता दूर हुई। उन्होंने समझ लिया कि लक्ष्मीनारायणकी अपार करुणासे ही मेरी रक्षा हुई है। प्रेम-गद्गद चित्तसे आँसू बरसाते हुए उन्होंने श्रीनारायणके चरणोंमें यह कह-कहकर प्रणाम किया—

"नमोब्रह्मण्य देवाय गो ब्राह्मण हिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः॥"

—**—

चतुर्थ अध्याय

बन्धु-समागम

भगवत्प्रेममें उन्मत्त होकर श्रीरामानुज बार-बार शालकूपकी प्रदक्षिणा करने लगे और स्त्रीके साथ श्रीपति-दम्पतिके रूपमें पुनः आकर दर्शन देंगे, इस आशासे चारो ओर देखने लगे। प्रायः दो घड़ी दिन चढ़ा होगा। दो-एक स्त्रियाँ घड़ा लेकर जल लानेके लिए नगरके समीपस्थ उस विशाल शालकूपकी ओर आ रही हैं। वहाँसे काञ्ची प्रायः आध कोसकी दूरीपर वर्तमान है। पूर्व, उत्तर और पश्चिमकी ओर वृक्ष-लता आदि होनेके कारण उधर आदमियोंका आना-जाना बिलकुल ही नहीं था। अतः श्रीरामानुज हृदय-द्वारको खोलकर भगवान्‌की महिमा-कीर्त्तन करके परमानन्दका उपभोग करते थे। उन्होंने भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति की—

"कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमोनमः॥
नमः प[illegible], नमः पङ्कजमालिने,
नमः पङ्कजनेत्राय, नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये॥"

कुम्भोरके समान उन्होंने यह कहकर भगवान्‌की स्तुति की—

"विपदः सन्तुनः शश्वत् तत्रतत्र जगद्गुरो,
भवतो दर्शनं यत्स्याद पुनर्भवदर्शनम्।

जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदःपुमान्
नैवार्हणाभिधातुं वै त्वयाकिञ्चनगोचरम् ।
नमोऽकिञ्चन वित्तायनिर्वृत्त गुणवृत्तये,
आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः ॥”

—श्रीमद्भागवत

जगद्गुरो, आपकी प्रसन्नतासे सदा हम लोगोंको विपद ही हो, क्योंकि विपत्तिके समय ही आपका दर्शन हो सकता है। तुम्हारे दर्शनसे पुनर्जन्म नहीं होता। जो मनुष्य ऐश्वर्यवान्, रूपवान् और पण्डित होकर उच्चवंशमें जन्म ग्रहण करनेके कारण अपनेको अधिक गौरवान्वित समझते हैं, उन्हें तुम्हारा नाम ग्रहण करनेका अधिकार नहीं है। क्योंकि अकिञ्चन भक्त ही तुम्हारा साक्षात् दर्शन कर सकते हैं। हे प्रभो! इस जगत्में जिनको अपना कहनेका कोई पदार्थ नहीं है, उन भक्तोंके आप ही एकमात्र धन हैं। आप धर्म, अर्थ और कामसे अतीत होकर सर्वदा स्वात्मा ही में प्रसन्नता लाभ करते हैं, आपमें वासनाका वेग नहीं है, अतएव आप सब प्रकारसे शान्त हो, आप समस्त जीवोंके मुक्तिदाता हो, अतः मैं आपकी वन्दना करता हूँ। इस प्रकार भगवान् श्रीरामानुज श्रीमन्नारायणकी भक्तिमें विभोर हो रहे थे, उसी समय घड़ा लिए हुए तीन स्त्रियाँ वहाँ आईं। उनको देखकर श्रीरामानुज काञ्चीकी ओर चले।

पुत्रके विरहमें माता कान्तिमती रो रही हैं। इसी समय प्रिय पुत्रको सहसा सामने देखकर पहले तो उनको विश्वास ही नहीं हुआ; परन्तु जब श्रीरामानुजने पैर पकड़कर प्रणाम किया तथा 'मैं आ गया, तुम तो आनन्दमें हो'—ऐसा अमृत-तुल्य मधुर वचन कहा, तब माताका समस्त सन्देह दूर हुआ। उन्होंने पुत्रका मुख चूमा, आशीर्वाद देकर बैठनेके लिए कहा और पूछा—“बेटा! तुम

बहुत जल्दी लौट आये, गोविन्द कहाँ है ? सुनती हूँ कि गङ्गा स्नान करके लोग छः महीनेमें लौटते हैं, तो क्या तुम रास्ते ही से लौट आये हो ?" श्रीरामानुजने आदिसे अन्त तक सभी बातें कहीं। यादवप्रकाशका पैशाचिक विचार सुनकर माता काँप गईं और ईश्वरकी दयाको स्मरण करके तथा पुत्रमुख देख कर वे आनन्दसे अधीर हो गईं। श्रीमन्नारायणके लिए भोग बनानेके अर्थ वे रसोईघरमें गईं। माता क्या बनावेंगी और क्या करेंगी, मारे आनन्दके इसका कुछ भी ठिकाना नहीं था। रसोईघरमें जाकर उन्होंने देखा, लकड़ी नहीं है। आज दो-तीन दिनसे लकड़ी घरमें नहीं है। किन्तु श्रीरामानुज घरमें नहीं थे, बहू भी अपने पिताके यहाँ गई है, फिर रसोई किसके लिए बने ? माता कान्तिमती भगवान्का प्रसाद लेकर दिन काटती थीं। इसी कारण वे लकड़ी की बात बिलकुल भूल गई थीं। आज वे श्रीरामानुजके लिए अत्यन्त अधीर होकर एकान्तमें बैठकर रोती थीं। इसी कारण उन्हें घरकी कोई बात स्मरण नहीं थी। वे स्वयं जाकर बाजारसे लकड़ी खरीद लावेंगी, क्योंकि आज दासी नहीं आई है, और पुत्र बहुत दूरसे चला आता है, इस कारण उसे कष्ट देना भी उचित नहीं। माताने यही निश्चय किया। उसी समयउनकी छोटी बहिन दीप्तिमती बहूको साथ लिए दूसरे द्वारसे आईं और प्रणाम करके उन्होंने पूछ—"बहिन, अच्छी तो हो ? आज दासीने जाकर कहा कि तुम खाना-पीना छोड़कर दिन-रात रोया करती हो, इसी कारण तुम्हें देखने आई हूँ। डर काहेका, भगवान् हैं, वे बच्चोंकी रक्षा करेंगे। कितने मनुष्य गङ्गा स्नान करके लौट आते हैं। तुम निश्चिन्त रहो। श्रीरामानुज और गोविन्द जब तक नहीं लौट आवेंगे, तब तक मैं भी यहीं रहूँगी। बहूको भी साथ लिए आई हूँ। दासी बाजारसे लकड़ी खरीद कर···" उनकी बात समाप्त होते-न-होते ही श्रीरामानुजने

आकर मौसीको प्रणाम किया। अकस्मात् भानजेको सामने देखकर दीप्तिमती आनन्दसे विह्वल हो गईं। श्रीरामानुजको उठाकर—'बेटा चिरंजीवी होओ'—आशीर्वाद दिया और गोविन्दका समाचार पूछने लगीं। कान्तिमती बहिन और बहूको पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं। लज्जाशीला बहू भी आकस्मिक प्रिय समागमसे अत्यन्त आनन्दित होकर पतिदेवके पैरोंपर पड़ गई और प्रेम-जलसे चरण प्रक्षालन करने लगी। आचार्य-परिवारमें मानों आज आनन्दकी तरंगें उठ रही हैं।

इसी समय घी, शक्कर, चावल, शाक, नून, लकड़ी आदि अनेक प्रकारकी रसोईकी सामग्री लेकर दासी आई। दोनों बहिनोंने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक भगवान्के भोग प्रस्तुत किए। भगवान्को भोग लगाकर श्रीरामानुजने घरके बाहर आकर देखा कि श्रीकाञ्चीपूर्ण उनके आनेका समाचार सुनकर उन्हें देखने के लिए बैठे हैं। जिस प्रकार पूर्णचन्द्रको देखनेसे समुद्र आनन्दसे प्रफुल्लित होकर असंख्य तरङ्गमालाएँ उठाता है और उनके द्वारा चन्द्रमाकी किरणोंका आदर करता है, उसी प्रकार श्रीरामानुजको देखकर श्रीकाञ्चीपूर्णने भी पुलकित होकर और दोनों हाथ बढ़ाकर प्रणाम करते हुए श्रीरामानुजके हाथ पकड़ लिए, और अपने चतुर्थ वर्ण होनेका उन्हें स्मरण दिलाते हुए बड़े आदरपूर्वक उन्हें लोक-विरुद्ध काम करनेसे रोका। तब श्रीरामानुजने कहा—"महात्मन्! आज हमारा बड़ा सौभाग्य है कि आपका दर्शन हुआ। कृपा करके आज आप यहीं प्रसाद लें, सभी कुछ तैयार है।" श्रीकाञ्चीपूर्णने भी स्वीकार किया।

श्रीरामानुजके घरमें आज जैसा आनन्दोत्सव हुआ, वैसा उनके पिताके पर-लोक जानेके बादसे नहीं हुआ था। यद्यपि गोविन्दके न रहनेके कारण दीप्तिमती को दुःखित होना चाहिये था, तथापि श्रीरामानुजके प्रति उसका ऐसा पुत्रवत् स्नेह था कि दुःख होना तो दूर रहे, उसके समान आनन्दित दूसरा नहीं हुआ।

—*:*:*—

पंचम अध्याय

राजकुमारी

इस समय श्रीरामानुज अपने घर ही में बैठकर अध्ययन करते हैं। उन्होंने माता और मौसीको यादवप्रकाशकी सब बातें कहकर और उन्हें गुप्त रखने के लिए कह दिया है और स्वयं भी वे इसकी चर्चा किसीसे नहीं करते। तीन महीनेके बाद यादवप्रकाश भी अपने शिष्योंके साथ काञ्चीमें लौट आये। गोविन्दके अतिरिक्त उनके अन्य सभी शिष्य आये हैं। दीप्तिमतीने पुत्रका समाचार पूछकर यह जाना—वनमें रामानुजका साथ छूट जानेके अनन्तर तीर्थयात्रीगण दुःखित होकर निरन्तर काशीकी ओर जाने लगे। वहाँ निर्विघ्न पहुँचकर उन लोगोंने श्रीविश्वनाथका दर्शन किया। तदनन्तर वे वहीं एक पक्ष तक ठहरे। एक दिन गङ्गा स्नानके समय जलमें से गोविन्दको एक सुन्दर * वाण लिङ्ग प्राप्त हुआ। यह देख यादवप्रकाश बहुत प्रसन्न हुए और वे गोविन्दको अनेक धन्यवाद देने लगे। यादवप्रकाशने कहा—"बेटा! महादेव तुमपर बहुत प्रसन्न हुए हैं, इसी कारण इस अमूल्य लिङ्ग-रूपसे तुम्हारी पूजा ग्रहण करनेके लिए तुम्हारे पास आये हैं। बड़े यत्नसे तुम इनकी सेवा करो। तुम्हारा लोक-परलोक दोनों बनेगा।" गुरुके उपदेशसे उसी दिनसे गोविन्द शिवकी सेवा करने लगे। शनैः-शनैः उनकी भक्ति प्रबल हुई और कालहस्तिके समीप आकर उन्होंने अपने गुरु

* यादवप्रकाशकी इसमें भी कोई चाल अवश्य थी।

और साथियोंको सम्बोधित करके कहा—"मैं अपने जीवनका शेष भाग यहीं शिवकी सेवामें बिताऊँगा। यह स्थान अत्यन्त मनोहर और एकान्त है। यहीं रहकर मैं अपने इष्टदेवकी उपासना करूँगा। यह बात आप लोग मेरी माता और मौसीसे कह दीजियेगा।" यह कहकर गोविन्द वहाँसे विदा हुए और पास ही मङ्गल गाँवमें स्थान खरीदकर उन्होंने वहीं अपने इष्टदेवकी स्थापना की और उनकी सेवामें जीवन तथा मन अर्पणकर वे रहने लगे।

पुत्रके इस सौभाग्यकी बात सुनकर दीप्तिमती बड़ी आनन्दित हुईं। अन्य स्त्रियोंके समान उनका पुत्र-प्रेम नहीं था। ईश्वरमें उनकी असीम भक्ति थी। अतएव पुत्रके लिए उनके मनमें दुःख नहीं हुआ, किन्तु अपनेको सत्पुत्रकी माता जानकर वे आनन्दमग्न हो गईं। भगिनीकी आज्ञा लेकर पुत्रको देखनेके लिए वे मङ्गल ग्राम गईं। पुत्रकी भगवद्भक्ति देख वे अत्यन्त आनन्दित हुईं और पुत्रको आशीर्वाद दे लौट आईं।

यादवप्रकाशने पुनः पढ़ाना आरम्भ किया। श्रीरामानुजको देखकर पहले तो वे डर गये थे; परन्तु उनके पैशाचिक विचारको कोई नहीं जानता, यह जानकर बाहरी आनन्द प्रकाशित करते हुए उन्होंने माताके सामने श्रीरामानुजसे कहा—"बेटा! तुम जीते हो, इससे बढ़कर हमारे आनन्दके लिए और क्या हो सकता है। विन्ध्याचलके वनमें तुम्हारे लिए हम लोगोंने जो कष्ट उठाया है, उसे कहकर मैं कैसे जनाऊँ।" श्रीरामानुजने प्रणामकर कहा—"सब आप ही की दया है।"

जो समस्त सिद्धान्तोंपर अपने सिद्धान्तको रखना चाहते हैं, वे अन्य विषयोंमें चाहे जितने उन्नत हों; परन्तु उनको संकीर्ण-चित्त होना ही पड़ेगा। यादवप्रकाशमें और अनेक गुण थे; परन्तु अद्वैत मतका अवलम्बनकर वे

अन्यान्य मतोंकी यथार्थता, सरलता, सुन्दरता आदिके विषयमें अन्धे हो जाते थे। परन्तु आज श्रीरामानुजकी नम्रता और सुशीलता देखकर और अपना राक्षसोचित कर्म यादकर वे मन-ही-मन बहुत लज्जित हुए। तदनन्तर बड़े स्नेहसे श्री रामानुजसे कहा—"बेटा! आजसे तुम हमारे यहाँ पढ़ा करो। भगवान् तुम्हारा कल्याण करें।" उसी दिनसे पुनः श्रीरामानुज यादवप्रकाशके यहाँ आने-जाने लगे।

इसके कुछ दिनोंके बाद वृद्ध आलवन्दार श्रीकाञ्चीपुरमें श्रीवरदराजके दर्शन करनेके लिये अपने शिष्योंके साथ गये। एक दिन वरदराजके दर्शन करके लौटनेके समय महात्मा आलवन्दारने श्रीरामानुजके कन्धेपर हाथ रखे तथा अन्यान्य शिष्योंके साथ अद्वैतकेशरी यादवप्रकाशको आते देखा। वृद्ध यामुनाचार्य श्रीरामानुजकी सात्विक प्रभा, उनका अतुल सौन्दर्य तथा उनका प्रतिभोद्भासित मुखमण्डल देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने पूछ करके जाना कि इसी युवकने "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इस श्रुतिकी विस्तृत व्याख्या की है, इससे वे बहुत प्रसन्न हुए तथा शुष्कतार्किक यादवके पास उनको देख दुःखित हुए और वरदराजसे प्रार्थना करने लगे—

"यस्य प्रसाद कलया वधिरः शृणोति,
पंगुः प्रधावति गवेन च वक्ति मूकः।
अन्धः प्रपश्यति सुतं भलते च वन्ध्या,
तं देवमेव वरदं शरणं गतोऽस्मि॥
लक्ष्मीश पुण्डरीकाक्ष कृपां रामानुजे तव,
निधाय स्वमते नाथ प्रविष्टं कर्तुमर्हसि।"

जिसके स्वल्प प्रसन्नतासे वधिर सुनने लगता है, पंगु बड़े वेगसे दौड़ने

लगता है जिह्वाहीनको वाक्‌स्फूर्ति होती है, अन्धेको आँख मिलती है और वन्ध्या पुत्रवती होती है, मैं उसी वरददेवके शरणागत हूँ। हे नलिननेत्र श्रीपते ! रामानुजपर कृपा करके उसे अपने मतमें ले आइये।

श्रीयामुनाचार्य चित्तानन्दकरी कमनीय मूर्तिमती विष्णु-भक्तिको विष्णु-भक्तिविहीन राक्षस-हृदय यादवके समीप देखकर बड़े दुःखी हुए। श्रीरामानुजसे बात करनेकी बलवती इच्छा रहनेपर भी यामुनाचार्यने उसे विषसंयुक्त अन्नके समान छोड़ दिया। पुनः भेंट होनेपर बात करूँगा, यह कहकर उन्होंने अपने उत्कण्ठित चित्तको समझाया, और वहाँसे भक्तिरसपरायण ज्ञानवृद्ध श्रीवैष्णवचूड़ामणि वृद्ध आलवन्दार श्रीरङ्गजीके लिये प्रस्थित हुए।

वेदान्तके अतिरिक्त यादवप्रकाश मन्त्रशास्त्रके भी पारदर्शी विद्वान् थे। भूत-प्रेत-ग्रस्त मनुष्योंको वे मन्त्रबलसे आरोग्य कर दिया करते थे। उनकी इसकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई थी।

एक समय काञ्चीपुरकी राजकुमारी भूतसे पीड़ित हुई। चारों ओरसे प्रसिद्ध-प्रसिद्ध मन्त्रशास्त्री निमन्त्रित किये जाने लगे। परन्तु कोई भी कुमारीको निरोग नहीं कर सका। अनन्तर वेदान्ताचार्य यादवप्रकाश बुलाये गये। भूतग्रस्त राजकुमारी यादवप्रकाशको देखते ही बड़े ज़ोरसे हँसी और बोली—"तुम्हारे मन्त्र-तन्त्रसे यहाँ कोई फल होनेवाला नहीं है। तुम क्यों व्यर्थ कष्ट उठाते हो, घर लौट जाओ।" उसकी बातोंपर ध्यान न देकर यादव एक पहर तक मन्त्रोच्चारण करते रहे, परन्तु इससे कुछ फल नहीं हुआ। तब भूतने कहा—"क्यों कष्ट उठाते हो। तुम हमसे भी अधम हो, अतः तुम हमको यहाँसे हटा नहीं सकते। यदि तुम यही चाहते हो कि मैं इस कोमलाङ्गी राजकुमारीको छोड़कर हट जाऊँ, तो तुम्हारे शिष्योंमें जो सबसे कम अवस्थाका है, जो आजानुबाहु,

विस्तृत ललाट, प्रतिभाकी आवासभूमि, यौवन-वनका सर्वसुन्दर कुसुम श्रीमान् रामानुज है, उसे यहाँ बुलाओ। मेघाच्छन्न अमावस्याकी रात्रिका घोर अन्धकार जिस प्रकार सूर्यके उदय होते ही नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार उस महानुभावके दर्शनसे मैं भी हट जाऊँगा।"

यादवप्रकाशने उसी समय श्रीरामानुजको वहाँ बुलवाया। भूतको राजकुमारीके शरीरसे हट जानेके लिये उनके द्वारा कहे जानेपर उस भूतने कहा—"आप कृपा करके मेरे सिरपर अपना चरण रखिये, मैं चला जाऊँगा। आप इस दासकी इस अभिलाषाको पूर्ण करें।" गुरुकी आज्ञासे श्री रामानुजने राजकुमारीके सिरपर पैर रखा और कहा—"राजकुमारीको छोड़ दो, और तुमने छोड़ा, इसका भी प्रमाण देते जाओ।" भूतने कहा—"यह मैं छोड़ता हूँ, इसके प्रमाणमें सामनेके पीपलके वृक्षकी शाखाको मैं तोड़ता हूँ।"

देखते-देखते पीपलकी एक शाखा टूट गई और राजकुमारी निद्रासे उठी हुईके समान चारों ओर देखने लगी। चेतना होनेपर उसने अपनेको सम्हाला और अपनी पूर्व अवस्थाको स्मरण करके वह लज्जित हुई तथा दासियोंके साथ वहाँसे उठकर वह भीतर चली गई।

काञ्चीराज अपनी कन्याके निरोग होनेका समाचार सुन शीघ्र ही वहाँ आये, और यादव तथा श्रीरामानुजको प्रणाम करके विशेष कृतज्ञता प्रकाशित की। तभीसे श्रीरामानुजका नाम विख्यात हो गया।

पूर्वोक्त भूतकी कथा केवल श्रीरामानुज-चरितमें ही हम लोग पहले-पहल देखते हैं, ऐसा नहीं है। ईसाकी जीवनीमें भी हम लोगोंको इसी प्रकारकी घटना अवगत होती है। महात्मा तुलसीदासके जीवनमें उलेट-फेर भी एक प्रेत की कृपाका ही फल बतलाया जाता है। सुना जाता है, इस देशमें आज भी

कहीं-कहीं स्त्रियोंको भूतपीड़ा होता है। पाश्चात्य वैज्ञानिक इस प्रकारके रोगीको हिष्टिरिया रोगग्रस्त बतलाते हैं। स्नायुकी दुर्बलता ही इसका कारण है। अधिक कोमलताके कारण स्त्रियोंमें प्रायः स्नायुकी दुर्बलता अधिक रहती है, अतः स्त्रियाँ ही इस रोगसे अधिक पीड़ित होती हैं—यह पाश्चात्य वैज्ञानिकोंका सिद्धान्त है। स्नायुके बलपर ही यह मनुष्य स्थिर है। स्नायुकी दुर्बलता तथा सबलता के कारण ही मनुष्य दुर्बल अथवा बलवान् होते हैं—यह बात माननी ही पड़ेगी। हमारे देशमें चार्वाक सम्प्रदायके विद्वान् बहुत पहले इस सिद्धान्तको मान चुके हैं। परन्तु यह सिद्धान्त सत्सिद्धान्त नहीं है, इस बातको आत्माको नित्य माननेवाले सभी स्वीकार करते हैं। आत्मा शरीरकी रक्षा करता है, शरीर आत्माकी रक्षा नहीं करता, क्योंकि आत्मसत्ता ही से शरीरकी सत्ता तथा सजीवता है, यह सभीको विदित है। अतः आत्मा मानव-शरीरके अधीन नहीं है, किन्तु देह ही आत्माके अधीन है। आतमा देहका आश्रय करके जगत्में सुख-दुःख आदिका भोग करता है। यही आत्मा स्थूल देहसे युक्त होनेपर मनुष्य, पशु, मृग, पक्षी, कीट, पतङ्ग आदिका रूप तथा नाम धारण करता है और स्थूल शरीरसे विमुक्त होनेपर गुणके अनुसार देवता, उपदेवता, ब्रह्मराक्षस, भूत, प्रेत अदिका आकार धारण करता है। जो पदार्थ इन्द्रियोंके द्वारा न जाना जाय, वह है ही नहीं, ऐसा कहना बुद्धिमानोंको शोभा नहीं देता। अतः सूक्ष्म शरीरका अस्तित्व स्वीकार न करना मूर्खता है। सांख्य-कारिका-कार महात्मा ईश्वरकृष्णने इस बातकी सुन्दर मीमांसा की है। उन्होंने कहा है—

"अतिदूरात् सामीप्यादिन्द्रियधातान्मनोऽनवस्थानात्।
सौक्ष्म्यात् व्यवधानादभिभवात् समानाभिहाराच्च।
सौक्ष्म्यात् तदनुपलब्धिर्नाभावात् कार्यतस्तदुपलब्धेः॥"

जो इन्द्रिय-ग्राह्य नहीं है, वह नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता; क्योंकि अति दूर होनेसे, अति निकट होनेसे, इन्द्रिय-विकलताके कारण, मनःसंयोग न रहनेके कारण, वायुके समान सूक्ष्म पदार्थ होनेके कारण, दूसरे पदार्थके बीचमें आ जानेसे, सूर्य-प्रकाशसे, ग्रह-नक्षत्रादिके समान अन्य वस्तुओं द्वारा अभिभूत होनेसे, जलमें जल मिलनेके तुल्य समान आकार हो जानेसे अथवा केवल अति सूक्ष्म योगबुद्धि ही के गोचर होनेसे साधारण मनुष्यको इन्द्रियों द्वारा विद्यमान वस्तुका भी ज्ञान नहीं प्राप्त होता है। वह वस्तु है ही नहीं, इस कारण उसका ज्ञान नहीं होता—यह बात नहीं है, क्योंकि कार्य द्वारा उसका अस्तित्व तो प्रमाणित होता ही है।

सत्त्वप्रधान सूक्ष्म शरीर होनेपर देवशरीर, रजःप्रधान होनेपर उपदेवादि का शरीर और तमःप्रधान होनेपर ब्रह्मराक्षस, भूत, प्रेत आदिका शरीर प्राप्त होता है। सूक्ष्म शरीरधारी स्थूल शरीरमें प्रवेश कर सकते हैं। इसी कारण सात्विक मनुष्यमें देवताका आवेश, राजसिक मनुष्यमें उपदेवताका आवेश और तामसिक मनुष्यमें भूत-प्रेत आदिका आवेश होना सम्भव है।

इस घटनाके पश्चात् पहलेके समान यादवप्रकाश अध्यापन-कार्य करने लगे। प्रतिदिन श्रीरामानुज प्रभृति शिष्यगण उनके चारों ओर बैठते और उनका सूक्ष्म शास्त्रार्थ सुनकर परम आनन्दित होते थे। एक दिन "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" (छान्दोग्य) और "नेहनानास्ति किञ्चन" (कठ) इस दोनों मन्त्रांशोंकी व्याख्या के समय यादवप्रकाशने अति सुन्दर रूपसे आत्मा और ब्रह्मकी एकता प्रतिपादित की। उनकी व्याख्या सुनकर श्रीरामानुजके अतिरिक्त और सभी शिष्य प्रसन्न हुए। पाठ समाप्त होनेपर श्रीरामानुजने दोनों मन्त्रांशोंके विषयमें अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकाशित की। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इसका अर्थ निखिल

जगत् ब्रह्मस्वरूप है। यदि ऐसा न होता, तो उसका "तज्जलान्" विशेषण न होता। यह जगत् ब्रह्मसे उत्पन्न है, ब्रह्म द्वारा जीवित है और अन्तमें ब्रह्ममें ही लय होता है। इसी कारण इसे ब्रह्ममय कहा जाता है। मछली जलसे उत्पन्न होती है, जलके ही द्वारा जीवित रहती है और जलमें ही वह लय होती है; परन्तु वह कभी जल नहीं हो सकती। इसी प्रकार जगत् कभी ब्रह्म नहीं हो सकता। "नेहनानास्ति किञ्चन" इसका अर्थ एकसे अतिरिक्त अन्य वस्तु नहीं है—ऐसा नहीं है; किन्तु इसका अर्थ यह है कि संसारमें वस्तु-समूह पृथक्-पृथक् नहीं हैं। जिस प्रकार एक सूतमें कई मोती मिलकर एक माला हो जाती है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न वस्तुएँ ब्रह्मरूपी सूत्रमें आबद्ध होकर जगत्के रूपमें परिणत होती हैं। अनेक केवल एकमें मिलकर एकाकार धारण किए हुए हैं। इससे अनेकत्वमें कोई हानि नहीं होती।

इस व्याख्याको सुनकर यादवप्रकाश बहुत अप्रसन्न हुआ और उसने श्रीरामानुजसे कहा—"यदि हमारी व्याख्या तुम्हें अच्छी नहीं जान पड़ती, तो तुम्हारा यहाँ आना अच्छा नहीं है।" "जैसी आपकी आज्ञा"—कहकर श्रीरामानुज गुरुको प्रणाम करके अपने घर चले गये।

षष्ठ अध्याय

श्रीकांचीपूर्ण

दूसरे दिन श्रीरामानुज अपने घरमें बैठकर शास्त्रालोचना करते थे, उसी दिन श्रीकाञ्चीपूर्ण वहाँ आकर उपस्थित हुए। उस समय प्रायः पाँच घड़ी दिन चढ़ आया था। स्मितवदन भगवद्भक्तिपूर्ण श्रीकाञ्चीपूर्णको आते देख श्रीरामानुज परम आनन्दित हुए। श्रीरामानुजने उठकर उनके बैठनेके लिये आसन रखकर कहा—"हमारे भाग्यसे ही आज आपका आना हुआ। करुणामय श्रीवरदराजकी यह असीम दया है। इसी कारण उन्होंने अपने इस अज्ञ बालकको संसारमें निःसहाय विचरण करते देख आपको हमारी रक्षाके लिये भेजा है। आपने सुना होगा, यादवप्रकाशने हमको अपने यहाँ आनेकी मनाई की है; किन्तु आप-जैसे महान् चन्दन-वृक्षकी शीतल छाया पानेसे हमारा वह दुःख मिट जायगा—ऐसी हमें पूर्ण आशा है। आप हमारे गुरु हैं, कृपा कर आप हमको शिष्य बनावें।" यह सुनकर श्रीकाञ्चीपूर्णने कहा—"बेटा रामानुज, मैं वैश्य और मूर्ख हूँ। तुम सद्ब्राह्मण और महापण्डित हो। मुझसे तुमको ऐसा नहीं कहना चाहिये था। मैं अवस्थामें वृद्ध हूँ सही; किन्तु तुम ज्ञानवृद्ध हो। शास्त्रमें मेरा वैसा ज्ञान नहीं है। इसी कारण श्रीवरदराजका दासत्व करके जीवन बिता रहा हूँ। मैं तुम्हारा दास हूँ, तुम मेरे गुरु हो।"

श्रीरामानुजने कहा—“महाराज! आप ही यथार्थ पण्डित हैं। शास्त्रोंसे जाना जाता है कि एक ईश्वर ही सत्य हैं और उनकी सेवा ही परम पुरुषार्थ है। यदि शास्त्र-ज्ञान भगवद्भक्ति उत्पन्न न करे और केवल पाण्डित्याभिमान उत्पन्न करे, तो उस मिथ्या ज्ञानसे अज्ञान ही उत्तम है। आपने शास्त्रोंके यथार्थ तत्वका आस्वादन किया है। अन्यान्य पण्डित लोग चन्दन-भारवाही गर्दभके समान केवल भारवहन करते हैं। आप मेरा परित्याग न करें, सब प्रकारसे आपके चरणोंका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ।” इतना कह-कर श्रीरामानुज सहसा उनके पैरोंपर गिर पड़े और दुःखीके समान रोने लगे। श्रीकाञ्चीपूर्णने बड़े प्रेमसे उनको उठाकर कहा—“बेटा! मैं तुम्हारी भगवद्भक्ति देखकर बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। तुम आजसे प्रतिदिन शालकूपसे श्रीवरदराजकी सेवाके लिये एक घड़ा जल ले आया करो। बहुत शीघ्र ही तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा।” “आपकी आज्ञा मेरे सिरपर है”—कहकर श्रीरामानुज घरसे एक नया घड़ा लेकर शालकूपकी ओर चले। श्रीकाञ्चीपूर्ण भी श्रीवरदराजकी सेवाके लिये उनके मन्दिरकी ओर चले।

श्रीकाञ्चीपूर्ण कौन हैं? पूविरुन्दवल्लिमें उनका जन्म हुआ था। बाल्या-वस्थासे ही वे श्रीवरदराजकी सेवामें लगे थे। केवल श्रीवरदराज ही उनके स्त्री, पुत्र आदि परिवार हैं। श्रीकाञ्चीपूर्ण सदा व्याकुल रहते थे, किस प्रकार श्रीवरदराज प्रसन्न हों, यही उनकी एकमात्र चिन्ता थी। गरमीके दिनोंमें सर्वदा शीतल जलशिक्त पंखा हाथमें लेकर वे अपने आराध्यदेवकी सेवा किया करते थे। कहाँ उत्तम फूल फूला है, कहाँ अमृतोपम फल पका है—इन सबका वे पता रखते थे। यथासमय वे उचित मूल्य देकर अथवा भिक्षा माँग कर उत्तम पुष्प, फल आदि भगवान्‌के लिये लाते थे। साधारण मनुष्य

उन्हें मनुष्य नहीं समझते थे ; किन्तु लोगोंका विश्वास था कि ये वरदराजके नित्यदास हैं और वैकुण्ठसे आये हैं। काञ्चीके रहनेवाले उनकी अत्यन्त भक्ति करते थे। उनका स्वभाव बालकोंके समान था। अभिमान किसको कहते हैं, यह वे जानते ही न थे। जो उनको देखते थे, उनके दुःख और कलंक छूट जाते थे और वे आनन्दित हो जाते थे। मनोमालिन्य, हृदय-सन्ताप, दुःख-दरिद्रता आदि उनको देखनेसे ही दूर हो जाते थे। जिस प्रकार वसन्त-ऋतुके आनेसे मधुकी वर्षा होती है, उसी प्रकार श्रीकाञ्चीपूर्ण भी जहाँ जाते थे, वहीं स्वर्गीय सुखका विस्तार करते थे। सभी उनको अपना अत्यन्त परिचित समझते थे। उन्हें कोई साधारण मनुष्य नहीं समझता था ; क्योंकि उनका स्वभाव प्रायः अलौकिक रूप धारण करता था। उनके साथ कोई अलौकिक पुरुष सर्वदा वर्तमान रहता था। मनुष्योंके साथ बातचीत करते समय वे सभीको भूल जाते थे, केवल उसी पुरुषकी बातें सुनते और बीच-बीचमें हँसा करते थे। कभी-कभी वे न मालूम क्या बकने लग जाते थे। यह देखकर सभी मौन रह जाते थे, किन्तु कोई उन्हें उन्मत्त नहीं कहता था ; क्योंकि उनके मुखकर एक ऐसी मधुरता और गम्भीरताकी रेखा थी, जिसे देखकर कठोर प्रकृति भी पिघल जाती थी। वह अदृश्य पुरुष कौन है ? सभी एक वाक्यसे कहते थे कि साक्षात् श्रीवरदराज। वे श्रीवरदराजके साथ वार्तालाप करते थे, वे भगवान्‌के मुखस्वरूप थे, उन्हींके द्वारा श्रीभगवान् अपना अभिप्राय प्रकाशित करते थे—यह सभी कहते थे। वे स्वयं अपनेको नीच कहा करते थे और ब्राह्मणोंकी विशेष श्रद्धा-भक्ति किया करते थे। अनेक ब्राह्मण उनका आदर करते थे और वैश्य होनेके कारण उनसे घृणा नहीं करते थे। केवल कतिपय पाण्डित्याभिमानी उन्हें पागल कहते थे, जिनमें यादवप्रकाश भी एक थे।

सप्तम अध्याय

श्रीआलवन्दार

कुछ दिनोंके अनन्तर वृद्ध श्रीआलवन्दार रोगग्रस्त होनेके कारण शय्याशायी हुए। शिष्यगण शय्याके चारों ओर बैठकर उनकी सेवा करने लगे। वे ज्ञान और भक्ति-स्वरूप महासत्व यामुन मुनि रोगसे पीड़ित होनेपर भी एक क्षणके लिये भगवद्दास्यकी महिमा कीर्त्तन करनेसे विरत नहीं हुए। वे शिष्योंको बार-बार सम्बोधन करके कहने लगे—"जिस प्रकार पुष्पोंका सार मधु है, दूधका सार घृत है, उसी प्रकार त्रिलोकके सार नारायण हैं। उनका आश्रय ग्रहण करनेसे चतुर्वर्गकी प्राप्ति होती है।" श्रीमहापूर्ण श्रीगोष्ठीपूर्ण आदि शिष्योंने श्रीआलवन्दारके समवयस्क न्यासिचूड़ामणि तिरुवराङ्ग पेरुमाल अरैयासे सन्देह दूर करनेके अर्थ यामुनाचार्यसे एक-दो प्रश्न करनेका अनुरोध किया। उन्होंने शय्याशायी यामुनाचार्यसे पूछा—"श्रीमन्नारायण तो वाक् और मनसे अतीत हैं, तब किस प्रकार उनकी सेवा की जायगी?" यामुन मुनिने उत्तर दिया—"भक्तोंकी सेवा करनेसे ही भगवान्‌की सेवा होती है। भक्तोंकी न जाति है, न उनका कुल है। वे ही ईश्वरकी दृश्यमान मूर्ति हैं। तुम लोग चाण्डाल-कुलोद्भव तिरुप्पाण आलवारकी सेवा करना, इसीसे तुम लोगोंका कल्याण होगा।" उन्होंने और भी कहा—"श्रेष्ठ भक्तगण, निष्ठा-भक्तिकी सहायतासे नारायण और उनके भक्तोंकी अर्चा मूर्तिकी सेवा करते हैं। तिरुप्पाण आल-

बार अनन्य चित्तसे श्रीरंगनाथकी सेवामें लगा है। श्रीकाञ्चीपूर्णकी श्रीवरद-राजकी सेवामें कैसी निष्ठा है! ये सब महापुरुष हैं। इनके समान आचरण करनेसे मंगल होता है। 'महाजनो येन गतः स पन्थाः'।" पुनः तिरुवरांगकी ओर देखकर उन्होंने कहा—"श्रीरंगनाथ भक्त तिरुप्याण आलवार ही हमारे प्रधान आश्रय हैं। वे ही हमारे संसार-समुद्रके कर्णधार हैं।" यह सुनकर तिरुवराङ्गका हृदय व्यथित हुआ और उन्होंने कहा—"क्या आपने शरीर त्याग करनेकी इच्छा की है?" यामुनाचार्यने उत्तर दिया—"यदि भगवान्की इच्छासे हमें यह शरीर छोड़ना भी पड़े, तो इससे तुम्हारे समान महात्माको दुःखित होनेका कोई कारण नहीं है। ईश्वरकी इच्छासे जो-कुछ हो, वही मंगल है, ऐसा दृढ़विश्वास होना उचित है। अहंकारका उनके चरणोंमें बलिदान करके तुम लोगोंको चिरकालके लिए सुखी हो जाना चाहिये। अहंकार ही सब दुःखोंका मूल है और निरहंकार होना सब सुखोंका मूल है। निरहंकारी पुरुष कभी कर्म-बन्धनसे बद्ध नहीं हो सकता। मैं उनका दास हूँ, इस प्रकारके हृदयका भाव होनेपर अहंकारके हाथसे छुटकारा मिल सकता है। अहंकारके नाश होनेपर मनुष्य समझ सकता है कि मैं जन्म-मरणके अधीन नहीं हूँ; किन्तु श्रीमन्नारायणका नित्य दास हूँ। उस समय 'हे प्रभो! मेरी रक्षा करो'—ऐसा कहकर उन्हें भगवान्के चरणोंमें प्रार्थना करनी नहीं पड़ती। उसी समय वे निष्काम भावसे भगवान्की सेवा कर सकते हैं। उसी समय उनकी अलौकिक भक्ति होती है। उसी समय वे ईश्वरके यथार्थ दास होते हैं। प्रयत्न हो जानेके पश्चात् भगवदधीन आत्म-यात्रा और कर्माधीन देह-यात्रा दोनोंमें उनका सम्बन्ध नहीं रहता। यदि उसके लिये वह सप्रयत्न होगा, तो प्रपत्तिनिष्ठाका भंग होकर वह नष्ट हो जायगा।"

तिरुप्पाण आलवारकी सेवामें तिवरांगका एकान्त अनुराग जानकर जमुनाचार्यने कहा—"तुम जो करते हो, उसके द्वारा शीघ्र ही तुम्हें अहैतुकी भक्तिकी प्राप्ति होगी।" जब ये बातें हो रही थीं, तब श्रीमहापूर्ण और श्रीगोष्ठीपूर्णने मन ही मन यह सङ्कल्प किया कि आलवन्दारके शरीर त्याग करनेपर हम लोग आत्महत्या कर लेंगे। उसी समय एक दूसरे शिष्यने कहा—"आपके न रहनेपर हम लोग किसके आश्रयमें रहेंगे? कौन हम लोगोंको इस प्रकार आश्वासन प्रदान करेगा?" इतना कहकर वह रोने लगा। श्रीयामुनाचार्यने उसे समझाते हुए कहा—"बेटा! तुम लोग घबराना नहीं। श्रीरंगनाथ ही तुम लोगोंके आश्रय थे, हैं और रहेंगे। सर्वदा उनका दर्शन करना। बीच-बीचमें श्रीवेंकटाचलस्थ श्रीनिवासजी और श्रीकाञ्चीपुरस्थ श्रीवरदराजका भी दर्शन करना।"

उनके शरीर त्याग करनेपर उनका शरीर जलाया जायगा अथवा समाधिस्थ किया जायगा, तिरुवरांगके यह पूछनेपर उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, क्योंकि उनका मन उस समय भगवान्‌के चरणोंमें लीन हो चुका था। शिष्योंमें से अनेकोंने आत्महत्या करनेका सङ्कल्प कर लिया था।

दूसरे दिन श्रीरंगनाथ असंख्य सेवकोंके साथ वायु-सेवनके लिये मन्दिरके बाहर गये। वहाँके वासी समस्त नर-नारी भगवान्‌के दर्शनके लिए वहाँ उपस्थित हुए। मनुष्योंसे चतुष्पथ भर गया। श्रीयामुनाचार्यके शिष्य भी गुरुकी आज्ञासे वहाँ आये। उसी समय भगवान्‌के एक सेवकपर देवताका आवेश हुआ। उसने श्रीमहापूर्ण और श्रीगोष्ठीपूर्णको सम्बोधित करके कहा—"तुम लोग आत्महत्याके विचारको छोड़ दो, यह मेरा अभिप्रेत नहीं है।" यह कहकर उसने तिरुवराङ्गके हाथ उन्हें सौंप दिया। तिरुवराङ्गने उन लोगोंको यामुना-

चार्यके निकट ले जाकर सब निवेदन किया। उन ज्ञानी महापुरुषने कहा—"आत्महत्या महापाप है। तुम लोगोंपर ईश्वरकी दया है, अतः उन्होंने स्वयं तुम लोगोंको यह दुष्कर्म करनेसे निषेध किया है। ऐसे सकल्पको शीघ्र ही छोड़ दो।" थोड़ी देर ठहरकर उन्होंने पुनः कहा—"तुम लोगोंको मेरा अन्तिम उपदेश यही है कि भगवान्‌के चरणारविन्दमें कुसुमाञ्जलि अर्पण करना, गुरूपदिष्ट मार्गसे चलना और भक्तोंकी सेवा द्वारा सर्वदा अहंकारको नाश करनेकी चेष्टा करना।" यह कहकर उन्होंने तिरुवरांगके हाथ समस्त शिष्यमण्डलीको सौंप दिया।

श्रीआलवन्दारका वह रोग छूट गया। उन्होंने स्वयं श्रीरंगनाथके उत्सवमें योग दिया था। समस्त शिष्यमण्डलीके साथ भगवान्‌का प्रसाद लेकर वे मठमें आये और पुनः शास्त्र-व्याख्या करने लगे। इसी समय काञ्चीसे दो ब्राह्मण आकर वहाँ उपस्थित हुए। यामुना मुनिके रोगका संवाद सुनकर ये लोग उनके दर्शन करनेको वहाँ गये थे। उनको देखकर श्रीआलवन्दार बड़े प्रसन्न हुए और वे श्रीरामानुजका समाचार पूछने लगे। ब्राह्मणोंने कहा—"इस समय श्रीरामानुजने यादवप्रकाशका शिष्यत्व छोड़ दिया है। अब वे घरपर ही बैठकर शास्त्रकी आलोचना करते हैं तथा श्रीकाञ्चीपूर्णके कथनानुसार प्रतिदिन शाल-कूपसे एक घड़ा जल लाकर श्रीवरदराजकी सेवा करते हैं।" यह सुनकर श्रीयामुनाचार्य बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसी समय आठ श्लोक बनाकर भगवान्‌की स्तुति की और महापूर्णको सम्बोधित करके कहा—"बेटा! तुम शीघ्र ही जाकर श्रीरामानुजको यहाँ बुला लाओ। उनके भीतर ईश्वरत्व छिपा हुआ है। उनको अपनेमें मिला लेनेसे अत्यन्त मंगल होगा।" यह सुनकर उसी समय गुरुके चरणोंको प्रणामकर श्रीमहापूर्णने काञ्चीपुरकी यात्रा की

दो-चार दिनोंके बाद पुनः श्रीआलवन्दार रोगग्रस्त हुए । पुनः उनके लिए शिष्यगण उत्कण्ठित हो उठे । इस बारकी पीड़ा कुछ अधिक दुःखदायिनी थी । उसी अवस्थामें एक दिन स्नानकर वे मन्दिरमें श्रीरंगनाथ भगवान्‌के दर्शन करनेके लिए गये और वहाँ प्रसाद ग्रहणकर पुनः अपने मठमें लौट आये । शिष्योंके मध्याह्नका भोजन कर लेनेपर उन्होंने अपने गृहस्थ भक्तोंको बुलानेकी आज्ञा दी । सब शिष्योंके एकत्रित होनेपर श्रीयामुनाचार्यने कहा—"यदि हमसे आप लोगोंमें से किसीका कुछ अपराध हो गया हो, तो उसे क्षमा करें ।" उन लोगोंने कहा—"यदि ईश्वरके द्वारा अपराध होना सम्भव हो सकता है, तो आपसे भी अपराध होना सम्भव है ।" पुनः तिरुवराङ्ग आदि शिष्योंका भार उनपर सौंपकर वे कहने लगे—"प्रतिदिन नियमपूर्वक श्रीरंगनाथजीकी सेवा, दर्शन, प्रसाद, पुष्प आदि ग्रहण करना । ऐसा करनेसे शीघ्र ही मन-बुद्धि निर्मल होगी और भगवान्‌का साक्षात्कार प्राप्त होगा । सर्वदा गुरुभक्तिपरायण और अतिथि-सेवक बने रहना ।" वे सभी चले गये । श्रीआलवन्दारके इस अभिनव भावको देखकर सभी विस्मित हुए ।

गृहस्थ भक्तोंके चले जानेपर श्रीआलवन्दार पद्मासन लगाकर बैठ गये । मनको बाह्य विषयोंसे हटाकर उन्होंने हृदयस्थ किया । उस समय समस्त शिष्य मधुर स्वरसे भगवत् माहात्म्य कीर्त्तन करने लगे । सुमधुर वंशीध्वनिने उस गानको अधिकतर मधुर बना दिया । एक प्रकारकी स्वर्गीय शान्ति और सुखसे सबका मुखमण्डल प्रकाशित हुआ । भगवद्भक्तिके आवेगमें सभी आत्मविस्मृत हो गये । क्रमशः आलवन्दारने मनको हृदयसे भ्रूमध्यस्थ किया । दोनों नेत्रोंके कोणसे आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगे । समस्त शरीर रोमाञ्चित और कण्टकित हो गया । सबके देखते ही देखते श्रीयामुनाचार्य ब्रह्मरन्ध्रको फोड़कर परब्रह्ममें

लीन हो गये। सबका गला रुँध गया। श्रीगोष्ठीपूर्ण और अन्यान्य शिष्यगण चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगे। कितने ही तो मूर्छित होकर गिर पड़े।

कुछ क्षणोंके अनन्तर शोकावेगके निरस्त होनेपर शिष्यगण श्रीआलवन्दार-नन्दन छोटे पूर्णको साथ लेकर अन्तिम कर्म सम्पादन करनेके लिये उद्यत हुए। तदनन्तर सभी लोग मिलकर, नये वस्त्र पहनाकर और सुसज्जित विमानपर बैठाकर शवको कावेरी तीरवर्ती श्मशानकी ओर ले चले। श्रीरङ्गनगरके रहनेवाले समस्त नर-नारी शवके साथ गये। श्मशान भूमि मनुष्योंसे पूर्ण हो गई।

—*:*:*—

अष्टम अध्याय

देह-दर्शन

गुरुके चरण-कमलोंसे विदा होकर श्रीमहापूर्णने काञ्चीपुरकी यात्रा की। वे दिन-भर चले ही जाते थे। रात होनेपर वे किसी भाग्यवानके घरपर ठहर-कर रात बिताते थे। इस प्रकार चलते-चलते चौथे दिन वे काञ्ची पहुँचे। वहाँ उन्होंने श्रीवरदराजका दर्शन करके श्रीकाञ्चीपूर्णसे भेंट की। उस समय सन्ध्या हो गई थी। महात्मा श्रीकाञ्चीपूर्णने उनके आनेका कारण जानकर उस रात्रिको अपने ही आश्रममें रहनेके लिये उनसे अनुरोध किया। अनेक प्रकारके वार्तालापकर और रात्रि बिताकर दूसरे दिन प्रातःकाल ही श्रीमहापूर्ण श्रीकाञ्ची-पूर्णके साथ मन्दिरकी ओर चले।

मार्गमें घड़ा लिये दूर ही से श्रीरामानुजको उन्होंने आते देखा। श्रीकाञ्ची-पूर्णने कहा—"मन्दिरमें जानेका समय हो गया, अतः मैं जाता हूँ। आप श्रीरामानुजसे अपना अभिप्राय प्रकाशित करें।" इतना कहकर वे चले गये। श्रीमहापूर्ण दूर ही से घड़ा लिये हुए, परम मनोहर दिव्यकान्तियुक्त, विष्णु-भक्तिका एकमात्र आश्रय मनुष्याकार उस देवताको देखकर पुलकित हो गये। उनके मुखसे अकस्मात् भगवद्गुणावली निकलने लगी :—

वशी वदान्यो गुणवानृजुः शुचि-

मृदुर्दयालुर्मधुरः स्थिरः समः।

ती कृतज्ञस्त्वमसि स्वभावतः
समस्त कल्याण गुणामृतोदधिः ॥

क्रमशः श्रीरामानुज उनके समीप आये। श्रीमहापूर्णने आनन्दोन्मत्त होकर भगवान्‌के चरण कमलोंमें प्रणाम किया :—

नमो नमो वाङ्मनसातिभूमये,
नमो नमो वाङ्मनसैकभूमये।
नमो नमोऽनन्त महाविभूतये,
नमो नमोऽनन्त दयैकसिन्धवे ॥

उन्होंने श्रीयामुनाचार्य-रचित और भी कई श्लोक पढ़े। उनके समीप आकर श्रीरामानुज खड़े हुए और एकाग्रचित्तसे श्रवण करने लगे। अनन्तर बड़ी नम्रतासे उन्होंने पूज्य वेषधारी वयोवृद्ध महात्मासे पूछा—"इन अलौकिक श्लोकोंका रचयिता कौन है? मैं उसको बार-बार नमस्कार करता हूँ। और आपके समान महात्माको भी बार-बार नमस्कार। आज मेरा दिन बड़े सौभाग्यका है; क्योंकि आपके पवित्र मुखसे इन पवित्र कथाओंको सुनकर मैं अपनेको पवित्र समझता हूँ।" श्रीमहापूर्णने कहा—"ये श्लोक हमारे प्रभु श्रीयामुनाचार्यके बनाये हैं।" श्रीयामुनाचार्यका नाम सुनकर श्रीरामानुजने बड़े आग्रहसे पूछा—"महोदय! मैंने सुना है, महर्षि पीड़ाग्रस्त थे, उनका शरीर सकुशल तो है? कितने दिनोंसे आपने महर्षिके चरण-कमलोंका दर्शन नहीं किया है।" श्रीमहापूर्णने कहा—"मैं अभी वहींसे आ रहा हूँ। जब मैं वहाँसे चला था, तब महाप्रभुका शरीर नीरोग था।" श्रीरामानुजने कहा—"आपके यहाँ आनेका उद्देश्य क्या है? आज आप प्रसाद ग्रहण कहाँ करेंगे? यदि किसी प्रकारकी आपत्ति न हो, तो आज इसी दासके घर प्रसाद ग्रहणकर दासको

कृतार्थ करें, मेरी यही प्रार्थना है ।" श्रीमहापूर्णने कहा—"जिनके लिये महर्षि श्रीयामुनाचार्य सर्वदा चिन्तित रहते हैं, उनसे बढ़कर कृतार्थ और भाग्यवान् और कौन हो सकता है ? महात्मन् ! अपने प्रभुकी आज्ञासे मैं तुम्हारे ही पास आया हूँ ।" श्रीरामानुजने विस्मित होकर कहा—"हमारे समान अति क्षुद्र मनुष्यको उस देव-तुल्य महात्माने स्मरण किया है ! क्या मैं उनके स्मरण करने योग्य हूँ ? किस अभिप्रायसे महर्षिने मुझे स्मरण किया है ?" श्रीमहापूर्णने कहा—"मेरे प्रभु तुमको देखना चाहते हैं, इसीलिये उन्होंने हमको तुम्हारे पास भेजा है। उनका शरीर रोगोंके कारण जीर्ण-शीर्ण हो गया है। इस समय वे कुछ सुस्थ हैं। अतः यदि उनकी इच्छा पूरी करनेकी तुम्हारी अभिलाषा हो, तो शीघ्र ही यहाँसे उनके दर्शन करनेके लिये चलना चाहिये ।" इस संवादको सुनकर श्रीरामानुज बड़े आनन्दित हुए। उन्होंने श्रीमहापूर्णसे कहा—"आप थोड़ी देर ठहरें। मैं इस भरे हुए घड़ेको मन्दिरमें रख आऊँ, तब श्रीरंगजीकी यात्रा करूँगा ।" यह कह बड़ी शीघ्रतासे श्रीरामानुज मन्दिरकी ओर चले। श्रीयामुनाचार्यके प्रति श्रीरामानुजकी स्वाभाविक भक्ति देखकर श्रीमहापूर्ण विस्मित हुए और इस प्रकारके शुद्ध भक्तके साथ वार्तालाप करनेके कारण उन्होंने अपनेको कृतार्थ समझा। उन्होंने कहा :—

तव दास्य सुखैक सङ्गिनां
भवनेष्वस्त्वयि कीट जन्म मे,
इतरावसथेषु मास्म भूद-
पि ये जन्म चतुर्मुखात्मना।

बहुत शीघ्र श्रीरामानुज लौट आये और चलनेके लिये प्रस्तुत हुए।

श्रीमहापूर्णने पूछा—"घरमें कहवा दिया ? तुम्हारे न रहनेपर घरके किसी काममें दिक्कत न पड़े, इसके लिये भी तो प्रबन्ध करना आवश्यक है।" श्रीरामानुजने कहा—"पहले भगवान् और भगवानके भक्तोंकी आज्ञा है, तदनन्तर घर है। मेरा चित्त श्रीयामुनाचार्यजीके दर्शनके लिए विशेष उत्कण्ठित हो रहा है। आप शीघ्र ही चलनेकी आज्ञा दें।" यह सुनकर श्रीमहापूर्ण आनन्दसे अधीर हो गये। वे श्रीरामानुजको आलिङ्गन करके परम आनन्दका उपभोग करने लगे। दोनों महापुरुषके दर्शनके लिये व्यग्र थे ही, इसलिये वे बड़ी शीघ्रतासे चलने लगे। वे दोनों चौथे दिन कावेरीके तीरपर वर्तमान श्रीत्रिशिरःपल्ली (Trichinopaly) में पहुँचे। वे शीघ्र ही कावेरीको पारकर श्रीरंगनाथजीके मन्दिरके समीपस्थ मठकी ओर चलनेको उद्यत हुए। उसी समय मनुष्योंकी भीड़ सामने देखकर उन लोगोंने पूछा—"यह इतनी भीड़ क्यों इकट्ठी हुई है ?" एक आदमीने उत्तर दिया—"महाशय, क्या कहूँ, पृथिवी आज अपने सबसे अच्छे अलंकारसे शून्य हो गई! महात्मा आलवन्दारको परमपद लाभ हुआ है।"

यह सुनते ही चेतनाशून्य होकर श्रीरामानुज भूमिपर गिर पड़े और श्रीमहापूर्ण उच्चस्वरसे रोने तथा सिर पीट-पीटकर कहने लगे—"प्रभो! दासको क्या इसी प्रकार छला जाता है ? क्या इसीलिये आपने हमें श्रीकाञ्चीपुर भेजा था ?" थोड़ी देर पश्चात् संज्ञायुक्त और शोक संवरण करके उन्होंने चेतनाशून्य श्रीरामानुजकी ओर देखा। तब उन्होंने जल लाकर उनकी मूर्छा दूर की और उन्हें समझाते हुए कहा—"बेटा, क्या करोगे ? जो भवितव्य है, वही होता है। यह सब नारायणकी इच्छा है। जिस महापुरुषके लिये हम लोग व्याकुल हुए हैं, उन्हींके कथनानुसार जो-कुछ होता है, वह मङ्गलके लिये ही

होता है। श्रीमन्नारायणकी इच्छाके अनुगामी होनेका उपदेश उन्होंने बार-बार हम लोगोंको दिया है। उनके परमधाम चले जानेपर उनके उपदेशोंको अमान्य करना हम लोगोंको कभी उचित नहीं है। चलो, समाधि-गर्भमें अदृश्य होनेके पहले उनके पवित्र शरीरका दर्शन कर लें।" श्रीरामानुज किसी प्रकार धैर्य धारणकर श्रीमहापूर्णके पीछे-पीछे चले। वे शीघ्र ही शिष्ययुक्त आलवन्दारके शरीर-मन्दिरके पास पहुँचे। उन्होंने देखा, महापुरुष दीर्घ निद्रामें पड़े हैं। उन्हें देखते ही श्रीमहापूर्ण उनके पैरोंपर गिरकर रोने लगे। श्रीरामानुज स्तब्ध होकर चित्र-लिखेके समान खड़े हो गये। उनकी आँखोंसे अविरल अश्रु-धारा प्रवाहित होने लगी।

कुछ कालके पश्चात् दोनोंका शोक कम हुआ। श्रीरामानुज टकटकी लगाये उस परम पवित्र श्रीयामुनाचार्यके शरीरको देखने लगे। समस्त सुन्दरताको हरण करनेवाली मृत्युकी छाया उनके पवित्र शरीरपर नहीं पड़ी थी। भला मृत्युकी क्या शक्ति है कि वह भगवद्भक्तको स्पर्श करे! स्थिर दृष्टिसे श्रीरामानुज उनकी ओर देख रहे हैं। भीतर-ही-भीतर मानों दोनों आपसमें कुछ बातचीत कर रहे हैं। सभी चुपचाप खड़े हैं। उतनी बड़ी भीड़में कोई भी कुछ नहीं बोलता। सभी खड़े-खड़े उस युगल मूर्त्तिका—जीवित और मृतका—अपूर्व समागम देखने लगे।

कुछ कालके उपरान्त श्रीरामानुजने पूछा—"देखता हूँ, महर्षिके दाहिने हाथकी तीन अँगुलियाँ मुड़ी हुई हैं। क्या ये पहले भी ऐसी ही रहती थीं?" पार्श्वस्थ शिष्योंने कहा—"नहीं, पहले तो अँगुलियाँ समान भावसे सीधी थीं। इस समय टेढ़ी हो जानेका कारण हम लोग कुछ भी नहीं समझ सकते।" यह सुनकर श्रीरामानुजने गम्भीर स्वरमें कहा—

अहं विष्णुमते स्थित्वा जनानज्ञानमोहितान् ।
पञ्च संस्कारसम्पन्नान् द्राविड़ाम्नाय परगान्,
प्रपत्ति धर्म निरतान् कृत्वा रक्षामि सर्वदा ॥

—मैं विष्णु-मतमें स्थित रहकर अज्ञान-मोहित मनुष्योंको पञ्च संस्कार-युक्त द्राविड़ वेद-विशारद और नारायणके शरणागत करके उनकी रक्षा करूँगा ।

यह कहते ही श्रीयामुनाचार्यकी एक अँगुली सीधी हो गई । श्रीरामानुजने पुनः कहा—

संगृह्य निखिलानर्थान् तत्वज्ञान परः शुभम् ।
श्रीभाष्यञ्च करिष्यामि जनरक्षण हेतुना ॥

—मैं लोक-रक्षाके लिए समस्त अर्थोंका संग्रह करके मङ्गलमय, तत्त्वप्रतिपादक श्रीभाष्यकी रचना करूँगा । यह कहते ही दूसरी अँगुली भी खुलकर सीधी हो गई । पुनः श्रीरामानुजने कहा—

जीवेश्वरादीन् लोकेभ्यः कृपया यः पराशरः ।
संदर्शयन् तत्स्वभावान् तदुपायगतीस्तथा ।
पुराणरत्नं संचक्रे मुनिवर्यः कृपानिधिः ।
तस्य नाम्ना महाप्राज्ञ वैष्णवस्य च कस्यचित् ॥
अभिधानं करिष्यामि निष्क्रयार्थं मुनेरहम् ।

—जिस कृपालु मुनिश्रेष्ठ पराशरने लोकोंके प्रति दयावश होकर जीव, ईश्वर, जगत्, उनका स्वभाव और उनकी उन्नतिके उपायको स्पष्ट रूपसे समझानेके लिए पुराणरत्न विष्णुपुराणकी रचना की थी, उनका ऋण परिशोध करनेके लिए मैं एक किसी महापण्डित वैष्णवको उनके नामसे प्रख्यात करूँगा । इतना कहते ही बची हुई अँगुली भी सीधी हो गई । यह देखकर सभी चकित हुए और समय

पाकर यही युवक आलवन्दारके आसनको ग्रहण करेगा, इसमें किसीको सन्देह नहीं रहा ।

श्रीयामुनाचार्यके शरीरको समाधि देनेके पहले ही श्रीरामानुजने काञ्चीपुरकी यात्रा की । आलवन्दारके शिष्योंने उन्हें श्रीरंगनाथजीके दर्शन करनेके लिए कहा ; परन्तु उन्होंने अश्रुकी धारा बहाते हुए कहा—"जिस भगवान्‌ने मेरा अभीष्ट पूरा नहीं किया, जिसने हमारे आराध्यदेवको सदाके लिए हर लिया, मैं ऐसे निष्ठुर भगवान्‌का दर्शन नहीं करना चाहता ।" इतना कहकर श्रीरामानुज स्वदेशके लिए प्रस्थित हुए । उसी दिनसे उनकी स्वाभाविक हँसी न मालूम किधर चली गई । वे यथासमय काञ्चीमें जाकर उपस्थित हुए । उनकी बाल्य चपलता नष्ट हुई, उसके बदले गम्भीरता और चिन्ताशीलता उपस्थित हुई । अब वे अपना अधिकांश समय एकान्तमें रहकर बिताने लगे और अपनी स्त्रीका साथ तक छोड़नेके लिए प्रयत्न करने लगे । केवल श्रीकाञ्चीपूर्णके साथ रहनेमें उनका कुछ आनन्द प्राप्त होता था ।
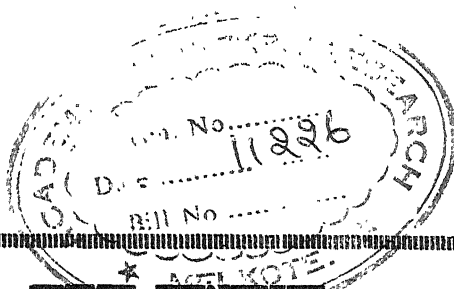
नवम अध्याय

मंत्र-रहस्य-दीक्षा

इस वज्रपातके लगभग छः महीने पहले श्रीरामानुजको एक और कठिन वेदना भोगनी पड़ी थी। पुत्र-प्राण-सती कान्तिमतीने पुत्र-स्नेहके बन्धनको काटकर पतिलोकको प्रस्थान कर दिया था। इस समय श्रीरामानुजकी स्त्री तंजमाम्बापर ही सब गृहकृत्यका भार था। वे परम सुन्दरी थीं। स्वाभाविक पतिभक्तिके रहनेपर भी अपने शरीर-संस्कार और शृंगारकी ओर उनकी विशेष दृष्टि थी। अपने स्वार्थमें किसी प्रकारकी त्रुटि न होनेपर, वे सेवा-सुश्रूषा द्वारा पतिको यथासम्भव प्रसन्न और सन्तुष्ट करनेका प्रयत्न किया करती थीं।

श्रीरंगजीसे लौटनेके समयसे श्रीरामानुजको घरके कामोंमें उदासीन देख कर तंजमाम्बाका हृदय भीतर-ही-भीतर तड़प रहा था। वे अपने मनके भावको छिपानेके लिए विशेष यत्न करती थीं। हृदयकी क्रोधाग्निको किसी प्रकार वे बाहर निकलने नहीं देती थीं।

श्रीरामानुज सर्वदा प्रायः श्री काञ्चीपूर्णके साथ ही रहा करते थे। उनका मन सर्वदा मलिन ही रहा करता था। यह देखकर एक दिन श्रीकाञ्चीपूर्णने उन्हें समझाते हुए कहा—"बेटा, हृदयमें दुःखको स्थान न दो। श्रीवरदराजकी भक्ति कर उनकी सेवाके लिए जिस प्रकार प्रतिदिन जल लाते हो, उसी प्रकार लाया

करो। भगवान्‌के प्रसादसे सभी मङ्गल होगा। आलवन्दारके कार्य समाप्त हो गए हैं। इसी कारण उन्होंने नित्य शान्तिके लिए भगवानके चरणोंमें आश्रय लिया है। उनके सामने तुमने जो प्रतिज्ञा की है, उसका सम्पादन करनेका प्रयत्न करो।" श्रीरामानुजने कहा—"आप मुझे शिष्य करें। आप मुझे अपने चरणोंकी छायामें विश्राम करनेकी आज्ञा दें।" इतना कहकर श्रीरामानुजने उनके सामने साष्टांग प्रणाम किया। श्रीकाञ्चीपूर्णने उठाकर कहा—"आप इस प्रकार घबराते क्यों हैं? आप ब्राह्मण हैं और मैं शूद्र हूँ। ब्राह्मणको मन्त्र देनेका वैश्यको अधिकार नहीं है। फिर कभी मेरे सामने इस प्रकार प्रणाम न करना। श्रीमन्नारायण शीघ्र ही तुम्हारे लिए गुरु भेजेंगे। इसके लिए चिन्ता करनेकी क्या अवश्यकता है?" यह कहकर श्रीकाञ्चीपूर्ण मन्दिरकी ओर चले गये।

श्रीरामानुजने मन-ही-मन सोचा कि ये हमको हीन अधिकारी समझकर दया नहीं करते हैं। जो हो, मैं उनका उच्छिष्ट भोजन करके अपने आत्माको प्रसन्न करूँगा। जो श्रीवरदराजके साथ सर्वदा विहार करते हैं, उनके जाति, कुल आदिके विचारसे लाभ क्या? उनकी दयासे चाण्डाल भी ब्राह्मणकी अपेक्षा अधिकतर शुद्ध हो जाता है। यह सोचकर उसी दिन सन्ध्याको वे श्रीकाञ्चीपूर्णके पास गये और उन्होंने दूसरे दिन अपने यहाँ मध्याह्नके भोजनके समय भोजन लिए श्रीकाञ्चीपूर्णको निमन्त्रित किया। श्रीकाञ्चीपूर्णने निमन्त्रण ग्रहण किया और कहा—"कल मैं आपके समान परम भक्तका अन्न खाकर अपने राजसिक और तामसिक आवरणको नष्ट कर दूँगा। इन आवरणोंके नष्ट होनेपर श्रीवरद-राज कभी मेरी दृष्टिसे वहिर्भूत न हो सकेंगे। अहा, कैसा हमारा परम सौभाग्य है!"

श्रीरामानुजने वहाँसे लौटकर अपनी स्त्रीसे दूसरे दिन प्रातःकाल उत्तम भोजन बनानेके लिए कहा ; क्योंकि उन्होंने श्रीकाञ्चीपूर्णको निमन्त्रण दिया है। दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर तंजमाम्बाने स्नान करके पाक बनाना प्रारम्भ किया। एक पहर दिन चढ़ते-न-चढ़ते ही तंजमाम्बाने भोजन बनाकर तैयार किया। यह देखकर श्रीरामानुज बड़े प्रसन्न हुए और श्रीकाञ्चपूर्णको लिवा लानेके लिए उनके आश्रमकी ओर चले।

इधर श्रीवरदराज-सेवक श्रीकाञ्चीपूर्ण श्रीरामानुजका अभिप्राय समझकर दूसरे मार्गसे उनके घरपर उपस्थित हुए और तंजमाम्बाको सम्बोधन करके उन्होंने कहा—"माता, आज हमें शीघ्र ही मन्दिरमें जाना होगा। जो-कुछ बना हो, वही मुझे दे दो। मैं ठहर नहीं सकता। आपके पति कहाँ हैं?" यह सुनकर तंजमाम्बाने कहा—"महात्मन्, वे आप ही को ढूँढ़नेको गए हैं, आते ही होंगे। थोड़ी देर आप ठहरें।" श्रीकाञ्चीपूर्णने कहा—"नहीं माता, मैं एक मुहूर्त भी नहीं ठहर सकता। मैं अपना पेट भरनेके लिए प्रभुकी सेवाका तिरष्कार नहीं करूँगा।" यह सुनकर, अभ्यागत फिर न जाय इस डरसे तंजमाम्बाने आसन और जल रख दिये। पुनः उन्होंने बनाये हुए पदार्थ एक-एक करके परोसकर बड़ी श्रद्धासे उन्हें भोजन कराया। भोजन करके श्रीकाञ्चीपूर्णने स्वयं उच्छिष्ट पत्तल, दोने आदि फेंके और उस स्थानको गोमयसे लीप दिया। तदनन्तर वे तंजमाम्बाको प्रणाम करके विदा हुए। गृहिणीने भोजनके अवशिष्ट अंश शूद्रोंको देकर और बर्तनोंको माँज-धोकर साफ़ किया और स्नान करके वे पुनः पतिके लिए भोजन बनाने लगीं।

श्रीरामानुजने लौटकर देखा कि उनकी स्त्री सद्यःस्नान करके पुनः भोजन बना रही है और जो-कुछ पाक बना था, अब उसमें कुछ भी नहीं बचा है।

उन्होंने विस्मित होकर स्त्रीसे पूछा—"क्या श्रीकाञ्चीपूर्ण आये थे ? तुम पुनः पाक क्यों बनाती हो ? प्रातःकाल जो बनाया था, वह कहाँ गया ?" तंजमाम्बाने उत्तर दिया—"महात्मा श्रीकाञ्चीपूर्ण आये थे । मैंने उनको तुम्हारे लिए ठहरने को कहा था ; परन्तु भगवान्‌की सेवाके लिए शीघ्र ही मन्दिरमें जाना है, यह कहकर उन्होंने ठहरना स्वीकार नहीं किया । अतः मैंने जो-कुछ सामग्री बनाई थी, वह उनको परोस दी थी । भोजन करके उन्होंने स्वयं स्थान भी साफ़ कर दिया है । जो-कुछ पाक बचा था, उसे मैंने शूद्र पड़ोसिनको दे दिया और अब आपके लिए स्नान करके भोजन बना रही हूँ । क्योंकि अवरवर्णका भुक्तावशिष्ट पाक आपको किस प्रकार दूँ ?" इससे श्रीरामानुजको बड़ा कष्ट हुआ । उन्होंने कहा—"मूर्खे ! तुझे किसी कार्य-अकार्यका विचार नहीं है । तूने महात्मा श्रीकाञ्चीपूर्णके प्रति शूद्रोंका-सा व्यवहार किया है । हमारे भाग्यमें उस महापुरुषका प्रसाद नहीं लिखा है । मैं बड़ा भाग्यहीन हूँ !" यह कहकर श्रीरामानुज अत्यन्त दुःखी होकर घरके बाहर आ एक वृक्षके नीचे बैठ गये ।

इधर श्रीकाञ्चीपूर्ण भगवान् श्रीवरदराजपर पंखा करते-करते उनसे कहने लगे—"प्रभो, तुम्हारी यह कैसी रीति है ? मैं तुम्हारी और तुम्हारे भक्तोंकी सेवा करके जीवन बिताना चाहता हूँ ; परन्तु ऐसा न कर आपने हमें एक महापुरुष बना दिया ! साक्षात् शेषावतार श्रीरामानुज हमारे सामने साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं । हमारे उच्छिष्ट भोजनके लिए उत्कण्ठित होकर उन्होंने आज हमें निमन्त्रित किया था । कहाँ रही तुम्हारी और तुम्हारे भक्तोंकी सेवा, यहाँ मैं स्वयं ही पूज्य बन गया ! यदि आप आज्ञा दें, तो तिरुपति जाकर मैं आपकी बालाजीकी मूर्तिकी सेवा करूँ ।" श्रीवरदराजने आज्ञा दे दी । श्रीकाञ्चीपूर्णने तिरुपतिमें जाकर छः महीने बिता दिए । अनन्तर एक दिन श्रीनारायणने

कहा—"काञ्चीपुरमें गरमीसे हमको बड़ा कष्ट होता है। तुम वहीं जाकर मेरी सेवा करो।" भगवान्‌की ऐसी आज्ञा सुनकर श्रीकाञ्चीपूर्ण पुनः काञ्चीके लिए प्रस्थित हुए।

इधर तैल-स्नानके दिन एक दुबला-पतला शूद्र दास श्रीरामानुजकी सेवाके लिए आया। उसको देखकर श्रीरामानुजको बड़ी दया आई। उन्होंने अपनी स्त्रीसे कहा—"यदि घरमें कुछ बासी अन्न हो, तो लाकर इसे दे दो। इसको देखनेसे मालूम पड़ता है कि तीन-चार दिनसे भोजन नहीं किया।" गृहिणीने उत्तर दिया—"घरमें इस समय कुछ भी नहीं है। इतने सबेरे भोजन कहाँसे आये?" यह कहकर वे स्नान करनेके लिए चली गईं। श्रीरामानुजने स्त्रीकी बातोंपर विश्वास न कर स्वयं रसोईघरमें जाकर देखा, तो बहुत-सा अन्न बचा हुआ रखा था। उन्होंने उसे भोजन कराकर तैल मर्द्दन करनेकी आज्ञा दी।

श्रीकाञ्चीपूर्ण तिरुपतिसे लौट आये हैं, यह सुनकर श्रीरामानुज उनके दर्शनके लिए गये। बहुत दिनोंपर परम मित्रको देख उनके आनन्दकी सीमा न रही। वे दोनों एक-दूसरेको देखकर बड़े प्रसन्न हुए। अनेक प्रकारकी बातचीत करके श्रीरामानुजने श्रीकाञ्चीपूर्णसे कहा—"महात्मन्, कतिपय सन्देह मेरे हृदयको हिलोड़ रहे हैं। आप श्रीवरदराजसे कहकर मेरे सन्देहोंको दूर कर दीजिए, जिससे मुझे शान्ति प्राप्त हो। मैं बड़ा कष्ट भोग रहा हूँ। आपको छोड़कर मैं दुःखकी बात और किससे कहूँ?" श्रीकाञ्चीपूर्णने कहा—"मैं इस विषयमें प्रभुसे निवेदन करूँगा।"

दूसरे दिन श्रीरामानुजके आनेपर श्रीकाञ्चीपूर्णने कहा—"बेटा, तुम्हारे विषयमें भगवान श्रीवरदराजने यह आज्ञा दी है :—

अहमेव परब्रह्म जगत्कारण कारणम् ।
क्षेत्रज्ञेश्वरयोर्भेदः सिद्ध एव महामते ॥
मोक्षोपायो न्यास एव जनानां मुक्तिमिच्छताम् ।
मद्भक्तानां जनानाञ्च नान्तिमस्मृतिरिष्यते ॥
देहावसाने भक्तानां ददामि परमं पदम् ।
पूर्णाचार्यं महात्मानं समाश्रय गुणाश्रयम् ॥
इति रामानुजार्चाय मयोक्तं वद सत्वरम् ॥

—(१) मैं ही जगत्कारण प्रकृतिका कारण परब्रह्म हूँ। (२) हे महामते, जीव और ईश्वरका भेद स्वतःसिद्ध है। (३) मुमुक्षु मनुष्योंका भगवानके चरण-कमलोंमें आत्म-समर्पण करना ही मुक्तिका कारण है। (४) मेरे भक्त अन्तिम समयमें मेरा स्मरण न भी करें, तथापि उनकी मुक्ति अवश्यम्भावी है। (५) देह त्याग करनेपर हमारे भक्तगण परमपद प्राप्त करते हैं। (६) सर्वगुण-सम्पन्न महात्मा श्रीमहापूर्णका आश्रय ग्रहण करो। मेरा यह सन्देसा शीघ्र श्रीरामानुजा-चार्यको जाकर सुनाओ।"

यह सुनकर श्रीरामानुज उन्मत्तके समान नृत्य करने लगे। उन्होंने श्रीवर-दराजके मन्दिरके सामने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। उनके हृदयमें जो छः सन्देह उन्हें व्याकुल कर रहे थे, वे सब नष्ट हो गये। श्रीकाञ्चीपूर्णके सामने श्रीरामा-नुजने अपने सन्देह नहीं कहे थे। श्रीकाञ्चीपूर्ण सत्य-ही-सत्य श्रीवरदराजके मुख-स्वरूप थे। निषेध करते रहनेपर भी श्रीरामानुजने श्रीकाञ्चीपूर्णको साष्टाङ्ग प्रणाम किया, और प्रातःकाल घर न जाकर वे श्रीरंगजीमें श्रीमहापूर्णके निकट दीक्षित होनेके लिए चले।

आलवन्दारके परमधाम जानेपर इधर श्रीरंगम् मठमें उस प्रकार सुमधुर

भावसे शास्त्रोंके रहस्यार्थकी व्याख्या करनेवाला कोई नहीं है। मठके अध्यक्ष तिरुवराङ्ग बनाये गये हैं। वे परम भागवत् और बहुशास्त्रदर्शी थे, तथापि शास्त्रोंकी व्याख्यामें उनको वैसी निपुणता प्राप्त नहीं थी। उनका अधिक समय भगवत् सेवामें ही व्यतोत होता था। उनके परम दास्य भावको देखकर सभी प्रसन्न थे। दूसरोंको आज्ञा देना दूर रहा, वे स्वयं दूसरोंकी आज्ञा-पालन करनेके लिए व्यग्र थे। उनके देवतुल्य स्वभावसे सभी उनके वशीभूत थे। मठमें विवाहित और अविवाहित दोनों प्रकारके भक्त रहते थे। विवाहित भक्तोंकी स्त्रियाँ मठसे बाहर नगरमें रहा करती थीं। बीच-बीचमें वे भक्तोंके दर्शन करनेके लिए मठमें भी आती थीं। मठमें रहनेवाले भक्त भगवदाराधन और भगवन्नामकीर्तन द्वारा दिन व्यतीत करते थे। इसी प्रकार प्रायः एक वर्ष बीत गया। अनन्तर एक दिन तिरुवराङ्गने समस्त भक्तोंको एकत्रित करके कहा—"आज एक वर्ष हुआ कि हम लोगोंके परमाराध्य प्राण-स्वरूप महात्मा श्रीयामुनाचार्य परमपदमें लीन हो गये। तबसे हम लोग उस मधुर भाषामें भगवत् गुणकीर्तन और शास्त्रीय गूढ़ मर्मोंकी व्याख्या सुननेसे वञ्चित हुए हैं। यद्यपि उस महापुरुषने आप लोगोंकी देख-रेखका भार इस क्षुद्र दासको सौंपा है, तथापि मेरे समान हीन बल व्यक्ति ऐसा भार वहन नहीं कर सकता। आप लोगोंको स्मरण होगा कि महामुनिने देह त्याग करनेके पूर्व काञ्चीपुरस्थ श्रीरामानुजके दर्शन करनेकी इच्छा प्रकट की थी और उनको बुलानेके लिए महापूर्णको वहाँ भेजा था। मेरी विवेचनासे वे ही शुद्ध सत्व महापुरुष इस भारको वहन करनेके योग्य हैं। हम लोगोंमें से कोई जाकर उन्हें पञ्च संस्कारयुक्त करके यहाँ ले आवें। वे ही यामुनमुनिके मतका समग्र भारतवर्षमें प्रचार करेंगे। समाधिके समय उनकी प्रतिज्ञा और मुनिवरका मुष्टिमोचन इस समय भी मैं अपनी आँखोंके सामने देख रहा हूँ।"

एकत्रित भक्तमण्डलीने एक स्वरसे उनकी बातोंका अनुमोदन किया और श्री रामानुजको दीक्षा देकर श्रीरंग ले आनेके लिए श्रीमहापूर्णको भेजा। श्रीमहापूर्णके जानेके समस उन्होंने कहा—"यदि उनकी इच्छा श्रीकाञ्चीपूर्णका सहवास त्याग करनेकी न हो, तो उनके आनेके लिए विशेष अनुरोध न करना। श्रीरंगनाथकी इच्छासे उन्हें यहाँ आना ही पड़ेगा—चाहे शीघ्र हो या विलम्बसे। तुम उनको द्राविड़ प्रबन्ध पढ़ाकर उनमें उन्हें विशेष निपुण बनाना। इसके लिए तुम्हें कमसे कम एक वर्ष वहाँ ठहरना पड़ेगा। हम लोगोंकी इच्छा है कि तुम अपनी स्त्रीको भी साथ लिए जाओ और हम लोगोंने तुम्हें श्रीरामानुजको लेनेके लिए भेजा है, यह उनको किसी प्रकार मालूम न पड़े।" यथासमय श्रीमहापूर्णने स्त्रीके साथ काञ्चोके लिए यात्रा की। दो दिन चलनेके उपरान्त वे मदुरान्तकके समीप पहुँचे। उस नगरके विष्णु-मन्दिरके सामने एक बहुत बड़ा तालाब है, उसी तालाबके किनारे श्रीमहापूर्ण और उनकी स्त्रीने विश्राम किया। उसी समय उन्होंने देखा कि जिसके लिए वे मठ छोड़कर काञ्चीपुर जा रहे हैं, जिनका दर्शन करनेके लिए उनका चित्त व्याकुल हो रहा है, उन्हीं श्रीरामानुजने स्वयं आकर उनको प्रणाम किया। सहसा स्नेहीको सामने देखकर वे आनन्द-विह्वल हो गए। तदनन्तर श्रीरामानुजको आलिङ्गन करके उन्होंने कहा—"वत्स! मैं तुम्हें यहाँ देख सकूँगा, ऐसी आशा मुझे न थी।" श्रीरामानुजने कहा—"यह सब श्रीमन्नारायणकी कृपा है। मैंने आपके ही चरण-कमलोंके दर्शनके लिए काञ्ची छोड़ी है। श्रीकाञ्चीपूर्णके मुखसे भगवान श्रीवरदराजने आपको ही मेरा गुरु बतलाया है। अतः कृपया आप मुझे दीक्षा दें।" श्रीमहापूर्णने कहा—"चलो, काञ्चीपुरमें श्रीवरदराजके सामने हम लोग इस शुभ कर्मका सम्पादन करें।" श्रीरामानुजने कहा—"महात्मन्, हमको एक मुहूर्तका भी विलम्ब असह्य मालूम पड़ता है।

स्वपन्तं वापि भुंजानं गच्छन्तमपि वर्त्मनि ।
युवानमपि बालं वा स्ववशे कुरुते विधिः ॥

—देखिये, मृत्युका कुछ ठिकाना नहीं है । मनुष्य सोता हो, भोजन करता हो, मार्गमें जाता हो, युवा हो, चाहे बालक हो, मृत्यु सब अवस्थाओंमें ही उसको अपने वशमें कर लेती है । आपके साथ कितनी आशा करके मैं श्रीयामुनाचार्यका दर्शन करनेके लिए गया था ; परन्तु हाय, दग्धविधिके कारण क्या वह आशा पूरी हुई ? इस समय भी उसका क्या विश्वास है । अतः आप इसी समय मुझे अपने चरणोंमें आश्रय दें ।" श्रीमहापूर्ण इस वैराग्यपूर्ण उक्तिको सुनकर बड़े आनन्दित हुए, और उन्होंने उसी विष्णु-मन्दिरके सन्मुख विशाल सरोवरके तीर शाखा-प्रशाखा विशिष्ट वकुल-वृक्षके नीचे यथाविधि अग्नि प्रज्वलित करके उसमें दो लौह मुद्राएँ रखीं । उनमें एक शंखमुद्रा और दूसरी चक्रमुद्रा थी । दोनों मुद्राओंके उत्तप्त होनेपर मन्त्र उच्चारण करके श्रीमहापूर्णने चक्रमुद्राके द्वारा श्रीरामानुजका दक्षिण बाहुमूल और शंखमुद्राके द्वारा वामबाहुमूल अंकित किया । तदनन्तर आलवन्दारके श्रीचरणोंका ध्यान करके उनके दक्षिण कर्णमें वैष्णव मन्त्र उपदेश किया । इस प्रकार दीक्षित होकर श्रीरामानुज विष्णुको साष्टाङ्ग प्रणामकर गुरु और गुरुपत्नीके साथ काञ्चीपुर आये ।

श्रीकाञ्चीपूर्ण श्रीमहापूर्णके आनेका शुभ संवाद सुनकर उनके दर्शन करनेके लिए आये । भक्तोंके सम्मिलनसे वहाँ अद्भुत आनन्दका श्रोत प्रवाहित हुआ । श्रीरामानुजके कहनेसे श्रीमहापूर्णने उनकी स्त्री तंजमाम्बाको भी शंख-चक्र द्वारा अंकित किया । इस प्रकार पति और पत्नीने दीक्षित होकर श्रीमहापूर्णका उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण किया । श्रीरामानुजने अपने घरके आधेमें श्रीमहापूर्णके रहनेके लिए प्रबन्ध कर दिया । उनका समस्त गृहभार वे स्वयं वहन करते थे और प्रतिदिन उनके समीप बैठकर द्राविड़ पाठ करते थे ।

दशम अध्याय

संन्यास

इस प्रकार छः महीने बीत गये। एक दिन श्रीमहापूर्ण और श्रीरामानुज दोनों ही किसी कामके लिये घरसे बाहर गये थे। घरमें तंजमाम्बा स्नान करके भोजन बनानेकी तैयारी करती थी। रसोईकी सब सामग्री एकत्रित करके वह जल भरनेके लिए घड़ा लेकर कुँएपर गई। इसी समय महापूर्णकी स्त्री भी रसोईके लिए जल लाने उसी कुँए पर गई। दोनोंने एक ही समय अपना-अपना घड़ा कुएँमें डाला और दोनों साथ ही जल खींचने लगीं। खींचनेके समय महापूर्णकी स्त्रीके घड़ेका जल तंजमाम्बाके घड़ेपर पड़ा। इससे तंजमाम्बा बहुत क्रुद्ध हुई और उसने झिटककर गुरुपत्नीसे कहा—"क्या तुम्हारी आँखें सिरपर चढ़ गई हैं? देखो, तुम्हारी असावधानीके कारण मेरा एक घड़ा जल नष्ट हो गया। गुरुकी स्त्री हो, इससे क्या तुम सिरपर चढ़ जाओगी? क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि तुम्हारे पितासे हमारे पिता कितने उच्च कुलीन हैं? तुम्हारा छुआ हुआ जल हमारे किस काम आवेगा? मूर्ख पतिके हाथ पड़कर मैंने जाति-कुल सभी गँवाया!" इस कटूक्तिको सुनकर श्रीमहापूर्णकी स्त्रीने अति विनयसे क्षमा-प्रार्थना की। वे स्वभावसे ही शान्त और सुशीला थीं। यद्यपि इन बातोंको सुनकर उन्हें बड़ा कष्ट हुआ था, तथापि उसे छिपाकर वे घर चली आईं और

घड़ा रखकर रोने लगीं। थोड़ी देर बाद श्रीमहापूर्ण आये। उन्होंने स्त्रीसे रोने का कारण पूछकर सब जान लिया और कहा—"नारायणकी अब ऐसी इच्छा नहीं है कि मैं यहाँ रहूँ। इसी कारण तंजमाम्बाके मुखसे उन्होंने कड़ी बातें तुम्हें सुनवाई हैं। दुःखी होनेकी अवश्यकता नहीं है। प्रभु जो-कुछ करते हैं, सभी मङ्गल ही के लिए करते हैं। चलो, अब शीघ्र ही चलकर हम लोग भगवान् श्रीरंगनाथका दर्शन करें। बहुत दिनोंसे उनके चरणोंकी सेवा नहीं की है। इसी कारण तुम्हें कड़ी बातें सुननी पड़ी हैं।"

दीक्षित होनेके अनन्तर श्रीरामानुजके समस्त कष्ट दूर हो गये। उन्होंने याण, अकन, ऊर्ध्वपुण्ड्र, मन्त्र और दास्य नामक इन पंच सस्कारोंसे संस्कृत होने पर अपनेको कृतार्थ समझा। श्रीमहापूर्णकी ही दयासे उन्होंने परम शान्ति पाई थी। अतः श्रीमहापूर्णके समान जगत्में उनका और कौन हितकारी हो सकता है, यह उन्होंने खूब समझ लिया था। इस कारण वे अपने गुरुको श्रीनारायण समझते थे। उनकी गुरुभक्तिकी तुलना नहीं थी। गुरुका उच्छिष्ट प्रसाद बिना लिये कभी वे भोजन नहीं करते थे। प्रतिदिन प्रातःकाल उठते ही वे गुरुको साष्टांग प्रणाम करते थे। तदनन्तर प्रातःकृत्य समाप्त करके वे गुरुके समीप बैठकर द्राविड़ प्रबन्धमालाका अध्ययन करते थे। उन्होंने छः महीनेके भीतर ही सरोयोगि-रचित एक सौ, भूतयोगि-रचित एक सौ, महायोगि-रचित एक सौ, विष्णुचित्त-रचित चार सौ छिहत्तर, गोदाम्बा-रचित एक सौ तैतालिस, कुलशेखर-रचित एक सौ पैंतालिस, भक्तिसार-रचित दो सौ सोलह, भक्तांघ्रिरेणु-रचित पचपन, श्रीपाणियोगि-रचित दस, मधुरकवि-रचित ग्यारह, परकाल-रचित तेरह सौ साठ, श्रीशठकोप-रचित बारह सौ छानवे—सब मिलाकर प्रायः चार हज़ार सुमधुर भक्ति-रसयुक्त सन्तापनाशक परम पवित्र गाथायें श्रीमहापूर्णसे पढ़ीं।

द्राविड़ प्रबन्धको आज श्रीरामानुजने समाप्त किया है, अतः वे गुरुको दक्षिणा देनेके अर्थ बाज़ारसे फल, ताम्बूल, पुष्प, नवीन वस्त्र आदि खरीदकर ले आये हैं। आज वे गुरु-दम्पतिकी षोड़शोपचार पूजा करेंगे। ऐसा निश्चयकर श्रीरामानुज घर लौटे हैं। परन्तु गुरुगृहमें प्रवेश करते ही उन्होंने देखा कि वहाँ कोई नहीं है। उन्होंने इधर-उधर बहुत ढूँढ़ा, परन्तु कुछ पता नहीं लगा। तदनन्तर एक पड़ोसीसे पूछनेपर उन्हें मालूम हुआ कि श्रीमहापूर्ण स्त्रीके साथ श्रीरंगम् चले गये। श्रीमहापूर्णके सहसा चले जानेका कारण पूछनेके लिए वे अपनी स्त्रीके पास पहुँचे। उन्होंने कहा—"आज प्रातः कुएँसे जल लानेके समय आपके गुरुकी स्त्रीसे मेरा झगड़ा हो गया था। मैंने तो कुछ कहा भी नहीं ; परन्तु महात्माजीको इतना क्रोध आया कि उन्होंने स्त्रीको साथ लेकर देश ही छोड़ दिया। सुनती हूँ कि साधुओंको क्रोध नहीं आता। ये तो एक नये प्रकारके साधु मालूम पड़ते हैं। तुम्हारे साधुके चरणोंमें बार-बार नमस्कार !" यह सुनते ही श्रीरामानुजको बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कहा—"पापिन, तेरा मुख देखनेमें भी पाप होता है।" यह कहकर फल, पुष्प आदि जो वे ले आये थे, वह सब सामग्री लेकर श्रीवरदराजकी पूजा करनेके लिए श्रीवरदराजके मन्दिरकी ओर चले।

श्रीरामानुजके जानेके थोड़ी देर बाद एक दुर्बल भूखा ब्राह्मण वहाँ आया और उसने गृहिणीसे खानेके लिए कुछ अन्न माँगा। तंजमाम्बा पतिकी बातोंसे अप्रसन्न थी ही, उसपर रसोईघरकी गरमीसे उस समय उसका शरीर पसीना-पसीना हो रहा था। भिक्षुकके शब्द उसके कानोंमें वज्रके समान मालूम पड़े। उसने क्रोधसे कहा—"जा, जा, दूसरी जगह जा, यहाँ कौन तुझे अन्न देनेके लिये बैठा है।" ब्राह्मण दुःखित होकर धीरे-धीरे अपने भाग्यको धिक्कारता

हुआ श्रीवरदराजके मन्दिरकी ओर चला गया। मार्गमें वहाँसे लौटते हुए श्रीरामानुजसे उसकी भेंट हुई। ब्राह्मणको जीर्ण-शीर्ण देखकर श्रीरामानुजने उससे पूछा—"ब्राह्मण! मालूम पड़ता है, आज आपको भोजन नहीं मिला है।" ब्राह्मणने कहा—"मैं आप ही के घर अतिथि होकर गया था; परन्तु आपकी स्त्रीने अन्न देनेकी अनिच्छा प्रकाश की, अतः लौटा जा रहा हूँ।" श्रीरामानुजने कहा—"नहीं, आपको लौटना नहीं पड़ेगा। कृपाकर आप हमारे साथ बाजार चलें। आपको मैं पत्र, फल, ताम्बूल और एक नया वस्त्र दूँगा। आप वह हमारी स्त्रीको दीजियेगा और कहियेगा कि मैं तुम्हारे पिताके यहाँसे आया हूँ। ऐसा कहनेसे वह आपका विशेष आदर करेगी और खिलावेगी।" यह कहकर वे बाजार गये और वहाँ सब वस्तुएँ खरीदकर उन्होंने उस ब्राह्मणको दीं तथा अपने ससुरके नामके हस्ताक्षर करके नीचे लिखे आशयका एक पत्र भी लिख दिया :—

"बेटा मेरी दूसरी कन्याका ब्याह शीघ्र ही होनेवाला है। इस कारण तुम तंजमाम्बाको इसी आदमीके साथ भेज देना। यदि विशेष कोई कारण न हो, तो तुमको भी यहाँ आना चाहिये। तुम्हारे आनेसे मैं अतिशय प्रसन्न होऊँगा। तंजमाम्बाके न आनेसे मुझे बड़ा कष्ट उठाना पड़ेगा, क्योंकि निमन्त्रित मनुष्योंके भोजन आदिका प्रबन्ध अकेली तुम्हारी सास नहीं कर सकेगी, इति।"

पत्र उन्होंने ब्राह्मणको देकर उसे अपनी स्त्रीके निकट भेजा। ब्राह्मणने जाकर सब वस्तुएँ और पत्र उसे देकर कहा—"आपके पिताने हमें भेजा है।" यह सुनते ही तंजमाम्बा बहुत आनन्दित हुई। उसने ब्राह्मणके स्नानके लिये जल लाकर रख दिया। इसी समय श्रीरामानुज लौट आये। तंजमाम्बाने बड़े विनयसे श्रीरामानुजके हाथमें पत्र देकर कहा—"हमारे पिताने तुमको यह पत्र लिखा

है।" श्रीरामानुजने पढ़कर उसे सुनाया और कहा—"मुझे एक बड़ा आवश्यक काम है, वहाँ जानेसे बड़ी हानि होगी, अतः इस समय भोजन आदिसे निवृत्त होकर तुम्हीं चली जाओ। उस कामके हो जानेपर मैं भी वहाँ आनेका प्रयत्न करूँगा। अपने पिता और मातासे मेरा प्रणाम कह देना।" तंजमाम्बाने यह स्वीकार कर लिया।

भोजनोपरान्त पतिके चरणोंको प्रणाम करके श्रीरामानुजकी स्त्री मैकेको चली, और श्रीरामानुज भी घर छोड़कर मन्दिरकी ओर चले। मार्गमें जाते-जाते आप-ही-आप श्रीरामानुज कहने लगे, 'पापानामकराः स्त्रियः'। बड़े कष्टोंसे मैंने इस पिशाचिनीसे छुटकारा पाया है। हे नारायण, आप अपने चरणोंमें दासको स्थान दें।

श्रीवरदराजके सन्मुख आकर उन्होंने साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा—"नाथ, आजसे मैं सब प्रकारसे तुम्हारा हूँ, मुझे ग्रहण करो।" यह कहकर काषाय-वस्त्र ग्रहणकर श्रीवरदराजके चरण-कमलोंसे स्पर्श कराकर मन्दिरके समीपस्थ अनन्त सरोवरके तीरपर वे गये। उसी समय श्रीकाञ्चीपूर्णने उन्हें 'यति-राज' कहकर सम्बोधित किया। इस प्रकार सब एषणाओंको जलाकर काय, मन और वचनको अपने वशमें रखनेके अभिप्रायसे उन्होंने त्रिदण्ड ग्रहण किया। वे काषाय-वस्त्रधारी यतिराज उस समय नवोदित सूर्यके समान दीप्तिमान हुए

—*:*:*—

एकादश अध्याय

यादवप्रकाशका शिष्य होना

असत्य भाषण करके श्रीरामानुजने स्त्रीसे छुटकारा पाकर संन्यास ग्रहण किया है। इससे बहुत लोग समझेंगे कि उनका यह काम धर्म-संगत नहीं हुआ; परन्तु ऐसा नहीं है।

आपदर्थे धनं रक्षेत् दारान् रक्षेद्धनैरपि।
आत्मानं सततंरक्षेद्दारैरपि धनैरपि॥

इस पुरातन नीति-वाक्यके अनुसार उन्होंने स्त्रीका त्याग किया था। पर कहा जा सकता है कि झूठी बात कह और स्त्रीको धोखा देकर उनका संन्यास ग्रहण करना उचित नहीं हुआ। मिथ्या बोलना सर्वदा पाप है, यह नीति-विशारदोंका मत नहीं है। सूर्य स्थिर है और पृथिवी घूमती है, यह मूर्खोंको समझानेके लिये प्रयत्न करना व्यर्थ है। अतएव नीति-विशारद कहते हैं:—

मूर्खं छन्दानुरोधेन तत्वार्थेन च पण्डितम्।

—मूर्खोंको उन्हींके अभिप्रायानुसार और पण्डितोंको यथार्थ वाक्य-प्रयोग द्वारा अपने वशमें करना चाहिये। श्रीचैतन्यदेवने माता शची देवीसे ही अपने गृहत्यागकी बात कही थी, विष्णुप्रियासे नहीं। श्रीमान् शाक्यसिंह चोरोंके समान घरसे निकलकर भाग गये थे। प्रणयिनी स्त्रीको उन्होंने अपने मनकी बातें नहीं

जनाई थीं। यद्यपि विष्णुप्रिया और गोपा दोनों ही पति-भक्तिपरायणा थीं, पति-सुख ही से वे अपनेको सुखी समझती थीं, तथापि लोक-कल्याणके लिये अवतीर्ण दोनों महापुरुषोंको वे अपनाना चाहती थीं। अतः उनमें स्वार्थ और मोहकी मात्रा अधिक थी। इसी कारण उनको यथार्थ बतला देना नीतिके विरुद्ध है। तंजमाम्बा उस प्रकारकी स्त्री नहीं थी। उसने तीन बार पतिकी आज्ञाका उल्लंघन किया था। अतः यदि श्रीरामानुज उससे अपने मनका भाव कहते, तो इससे एक विलक्षण काण्ड उपस्थित होता। जिसके जीवनका प्रधान उद्देश्य आत्म-सुख है और पति-सुख गौण है, ऐसी देहाभिमानिनी, स्वार्थपरायणा, सौन्दर्यमुग्धा स्त्रीकी सर्वदा यही इच्छा होती है कि पति हरि-सेवाको छोड़कर सर्वदा हमारी ही सेवामें लगे रहें। ऐसी स्त्रीसे हरि-सेवाके लिये परामर्श करना ही उन्मत्तता है। श्रीरामानुजने तंजमाम्बाके हृदयमें हरि-भक्तिका बीज रोपनेके लिये विशेष प्रयत्न किया था ; परन्तु स्वार्थ-सिकतामय ऊसर क्षेत्रमें अंकुर उत्पन्न होनेकी कोई आशा ही नहीं देखी गई। अतएव वे उक्त कालकी प्रतीक्षा करने लगे। अश्रुधारा ही स्वार्थ-सिकताको धौत करनेका एकमात्र उपाय है, यह वे भलीभाँति जानते थे। इसी कारण उन्होंने घर छोड़ा। इससे जिस प्रकार श्रीरामानुजका चित्त सर्वदा भगवान्के ध्यानमें निमग्न होकर अपनेको कृतार्थ समझेगा, उसी प्रकार तंज-माम्बाके नयनोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होकर उनके हृदयकी ऊसरताको नष्ट करेगी। अतः तंजमाम्बाको धोखा देकर श्रीरामानुजका संन्यास ग्रहण करना अन्याय नहीं है।

श्रीरामानुजने किस सम्प्रदायके अनुवर्ती होकर चतुर्थ आश्रम ग्रहण किया? इस प्रश्नके उत्तरमें यही कहा जायगा कि उन्होंने अद्वैत सम्प्रदायका अनुवर्तन नहीं किया ; क्योंकि बाल्यावस्थासे ही उन्होंने अपने गुरु यादवप्रकाशके सथा

उसी सिद्धान्तके विषयमें विवाद किया है। उन्होंने श्रीशंकर-सम्प्रदायी उस समयके किसी संन्यासीको गुरु नहीं बनाया था। साक्षात् सनातन श्रीवरदराज ही उनके गुरु हुए थे और भगवान्‌में एकान्तिकी और अद्वैतकी भक्ति ही उनके संन्यासमें हेतु है। वे सर्वदा अनन्य चित्त होकर श्रीहरिके ध्यानमें निमग्न होना ही अधिक उत्तम समझते थे। इस कारण सांसारिक विषयोंमें मन देना उनके लिये कठिन हो गया। अतएव ऐसे महानुभावोंको संसार-त्यागना ही स्वभाव-सिद्ध है। भक्ति-रसमें वे समस्त रसोंको भूल गये थे। इस कारण उन्हें भक्ति-मार्गका संन्यासी कहना अधिक उपयुक्त है।

संन्यास-ग्रहणके अनन्तर आबाल-वृद्ध-वनिता सभी विस्मित हुए। स्त्री युवती और परम सुन्दरी है। स्वयं भी युवक और सुन्दर हैं। इस अवस्थामें संसार-सुख छोड़ना भोगियोंकी दृष्टिमें नितान्त असम्भव है। इसी कारण अनेक मनुष्य उन्हें उन्मत्त समझने लगे। कोई-कोई उनका अवतारोंके साथ तुलना करते थे। वहाँके मठके रहनेवालोंने उन्हें अपना अध्यक्ष बनाया। उनका गुणाधिक्य और पण्डित्य किसीसे छिपा नहीं था। अतएव दो-एक शिष्य भी उनके चरणाश्रित हो गये। दाशरथि नामक उनका एक भानजा सबसे पहले उनसे दीक्षित हुआ। तदनन्तर हारीत-गोत्रीय कूरनाथ वा कूरेश उनके दूसरे शिष्य हुए। इनकी असाधारण स्मृतिशक्ति थी। ये जिस बातको एक बार सुन लेते, उसे कभी भूलते नहीं थे। इन्हीं दोनों शिष्योंके साथ मठमें बैठकर और ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करके श्रीरामानुज जिस समय आगन्तुकोंके साथ वार्तालाप करते थे, उस समय उनकी एक अपूर्व शोभा होती थी।

एक समय यादवप्रकाशकी वृद्धा माता श्रीवरदराजका दर्शन करने आईं। मठमें उन्होंने श्रीरामानुजका भी दर्शन किया, और उनके रूप-गुणपर मोहित

होकर वे मन-ही-मन सोचने लगीं कि यदि मेरा पुत्र इस महानुभावका शिष्य हो जाता, तो अवश्य ही उसे परम शान्ति प्राप्त होती। यादवप्रकाशने श्रीरामानुजके प्रति जबसे पशुओंके समान आचरण किया था, तबसे उसके हृदयमें शान्ति नहीं थी, यह बात उसकी माता जानती थी। नवीन संन्यासीकी देवतुल्य मूर्त्ति देखकर वृद्धाने उन्हें श्रीवरदराजकी दूसरी मूर्त्ति समझा और निश्चित किया कि यदि मैं यादवप्रकाशको इस महात्माके चरणोंमें ला सकी, तो अवश्य ही यादवप्रकाशका बड़ा मंगल होगा। घर लौटकर वृद्धाने अपने पुत्रसे अपने हृदयका भाव प्रकाशित किया और उसी प्रकार कार्य करनेके लिये उससे विशेष अनुरोध किया। शिष्यका शिष्य होना पड़ेगा, यह बात सोचकर यादवप्रकाशने माताके आज्ञापालनमें अनिच्छा प्रकाशित की; परन्तु उसके चित्तने इस अपसिद्धान्तको स्वीकार नहीं किया। उत्कण्ठित होकर घूमते-घूमते उसने मार्गमें सहसा श्रीकाञ्चीपूर्णको देखा और बड़ी भक्तिसे उनसे पूछा—"महात्मन्! मेरे हृदयमें एक प्रकारकी अशान्ति उत्पन्न हुई है, उसके शान्त होनेका कृपया उपाय बता दीजिये; क्योंकि आप श्रीवरदराजके मुख-स्वरूप हैं, अतएव सर्वज्ञ हैं।" श्रीकाञ्चीपूर्णने कहा—"आप आज घर जायँ, कल प्रभुसे सब बातें जानकर मैं आपसे कहूँगा।"

दूसरे दिन श्रीकाञ्चीपूर्णके मुखसे श्रीरामानुजका असाधारण महत्व और उनके शिष्य होनेसे अपने मंगलका होना सुन यादवप्रकाशने मठमें जाकर श्रीरामानुजाचार्यका दर्शन करने और उनके साथ शास्त्रालाप करनेका संकल्प किया। उसने सोचा कि मूर्खोंके समान योंही किसी बातपर विश्वास करना अनुचित है। पिछली रातको स्वप्नमें श्रीरामानुजाचार्यका शिष्य होनेके लिये उससे किसी पुरुषने कहा। आज श्रीकाञ्चीपूर्णने भी वे ही बातें कहीं। परन्तु

वह स्वप्न अथवा किसीकी बातोंके भुलावेमें आनेवाला नहीं है। इसी कारण वह भिक्षोपरान्त मठमें गया। श्रीरामानुजाचार्यकी अमानुषी ज्योतिको देखकर सचमुच ही वह मोहित हो गया; परन्तु जिसे वह शिष्य समझ रहा है, उसे सहसा गुरुके आसनपर बैठा देना क्या उचित है?

यादवप्रकाशको आते देखकर बड़े आदरसे श्रीरामानुजाचार्यने उसे आसन दिलवाया। इससे यादवप्रकाश विशेष प्रसन्न हुआ। इधर-उधरकी बातोंके हो जानेपर यादवप्रकाशने कहा—"बेटा! तुम्हारे पाण्डित्य और विनयसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। देखता हूँ, तुमने ऊर्ध्वपुण्ड्र और दोनों बाहुओंमें शंखचक्र धारण किया है और तुम्हें सगुणोपासना ही अच्छी मालूम पड़ती है। अच्छा तो क्या तुम इसके शास्त्रीय प्रमाण दे सकते हो?" श्रीरामानुजाचार्यने कहा—"ये कूरनाथ बड़े बुद्धिमान हैं। इन्हें समग्र शास्त्र कण्ठस्थ हैं। आप इनसे पूछें, ये आपको अनायास ही अनेक प्रमाण दे सकेंगे।" यादवने कूरनाथकी ओर देखा। कूरनाथने कहा—"महाशय, सामवेदका ही प्रमाण सर्वश्रेष्ठ है; क्योंकि भगवान् गीतामें कहते हैं—'वेदानां सामवेदोस्मि'। अतएव पहले आपको सामवेद ही का प्रमाण देते हैं :—

'प्रतप्ते विष्णोरब्जचक्रे पवित्रे जन्माम्भोधिं तर्त्तवे चर्षणीन्द्राः,

मूलेबाह्वोर्दधतेऽन्ये पुराणाः लिङ्गान्यङ्गे तावकान्यर्पयन्ति ॥' (साम्नि)

—मानवश्रेष्ठ भवसागरसे पार होनेके लिये बाहुमूलमें विष्णुके पवित्र शंख और चक्रका चिह्न धारण करते हैं। कोई-कोई इन चिह्नोंको अङ्गोंमें धारण करते हैं।

'पवित्रमित्यग्निः। आग्निर्वै सहस्रारः। सहस्रारो नेमिः। नेमिना तप्त तनुर्ब्राह्मणः सायुज्यं सलोकतामाप्नोति ॥' (सामवेदमें नारायणीय शाखा)

—अग्निदग्ध, सुतरां लोहितवर्ण उक्त सुदर्शनचक्र द्वारा जिनका शरीर उत्तप्त हुआ,

वे ब्रह्म सायुज्य प्राप्त करके ब्रह्मलोकमें वास करनेके अधिकारी होते हैं।

'पवित्रंतेविततं' इत्यादि श्रुतिमें जो पवित्र शब्द है, वह अग्नितप्त अतएव अग्नितुल्य सुदर्शनवाचक है। वही अग्नितप्त सुदर्शन सहस्रार कहा जाता है। सहस्रार जो है, वह नेमि शब्द वाच्य है।

'एभिर्वयमुरुक्रमस्य चिन्है रङ्किता लोके सुभगा भवामः।
तद्विष्णोः परमं पदं येऽधि गच्छन्ति लाञ्छिताः अथर्वण ॥'

—जो लोग लाञ्छित अर्थात् चक्र आदि चिह्नोंसे चिह्नित हैं, वे वैष्णव परमपदको जाते हैं। अतएव हम भी त्रिविक्रम भगवान्‌के इन चिह्नोंसे अंकित होकर वैकुण्ठलोकमें शोभनैश्वर्यशाली होवेंगे।

'उपवीतादिवद्धार्याः शङ्खचक्रादयस्तथा।
ब्राह्मणस्य विशेषेण वैष्णवस्य विशेषतः॥'

—ब्राह्मणोंको, विशेषकर वैष्णवोंको, उपवीत आदिके समान शंखचक्रादि चिह्न धारण करने चाहिये।

'हरेः पदाकृतिमात्मनो हिताय मध्ये छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं यो धारयति स परस्य प्रियो भवति स पुण्यवान् भवति समुक्तिभाक् भवति।' (महोपनिषत्)

—जो मनुष्य आत्म-कल्याणके लिये भगवान्‌के चरणाकार मध्यमें अवकाशयुक्त ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करते हैं, वे परमात्माके प्रिय भक्तिमान् और मुक्तिमान् होते हैं।

हे पण्डितप्रवर ! अब मैं ब्रह्मके सगुण होनेके विषयमें प्रमाण-रूप श्रुति कहता हूँ—'यः सर्वज्ञः सर्ववित्परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान-बलक्रिया च' (श्वेताश्वतर) वे उत्तम अनन्त शक्ति-सम्पन्न हैं, उनका ज्ञान, बल और कार्य स्वभावसिद्ध धर्म है।

'अपहतपाप्मा विज्वरेविमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकल्याण गुण सत्यसङ्कल्पः।'

—वे पापलेश-शून्य हैं । जरा, मृत्यु, शोक, क्षुधा, पिपासा उनको नहीं है । वे कल्याण गुणवान् हैं और उनके संकल्प कभी मिथ्या नहीं होते ।

'नारायणः परंब्रह्म तत्वं नारायणः परम् । नारायण एवेदं सर्वम् निष्कलङ्को निरंजनो । निर्विकल्पो निराख्यातः शुद्धो दव एको नारायणः । एको ह वै नारायण आसीत् । न ब्रह्म नेशानेः । नइमेद्यावा पृथिवी, न नक्षत्राणि, नापो नाग्निर्न यमो न सूर्य इति ।'

—नारायण ही परमब्रह्म और परमतत्व हैं, यह समस्त नारायणके अतिरिक्त और कुछ नहीं है । वे ही निष्कलंक, विकारहीन, नामहीन, शुद्ध और सर्वप्रकाशक हैं । पहले एकमात्र नारायण ही थे । उस समय ब्रह्मा, शिव, पृथिवी, आकाश, नक्षत्र, जल, अग्नि, चन्द्र और सूर्य कोई भी नहीं थे ।"

इसी प्रकार कूरनाथ वेद, पुराण, इतिहास आदिसे अनेक प्रमाण देने लगे । उन सबका यहाँ उल्लेख करना अनावश्यक है । उनके मुखसे गंगाकी धाराके समान अविरत प्रमाणोंको निकलते देख यादवप्रकाश चकित हो गये । इसके पहले ही उनकी सुन्दरता और सुजनतापर यादवप्रकाश विशेष आकृष्ट हुए थे । इसके अतिरिक्त अपना पूर्व अत्याचार, माताकी आज्ञा, श्रीकाञ्चीपूर्ण-कथित श्रीवरदराजकी इच्छा आदिको स्मरण करके वे अधिक काल तक नहीं ठहर सके । उन्होंने दौड़कर श्रीरामानुजाचार्यके चरण पकड़ लिये । निषेध करते रहनेपर भी वे चरण पकड़े हुए रोने लगे और गिड़गिड़ाते हुए बोले—"हे रामानुज ! तुम सत्य ही राघवके अनुज हो । मैं अज्ञानान्ध होकर तुम्हें पहचान नहीं सका । मेरा अपराध क्षमा करो । तुम कर्णधार होकर इस भयंकर भव-समुद्रसे मेरा उद्धार करो । मैं तुम्हारे शरणागत हूँ ।" गुरुको ऐसी अवस्थामें देखकर श्रीरामानुजाचार्य स्थिर न रह सके । उन्होंने उसी समय उनको भूमिसे

उठाकर अपनी छातीसे लगा लिया और उनके हृदयकी समस्त अशान्तियोंको नष्ट कर दिया।

माताकी आज्ञासे उसी दिन श्रीरामानुजसे प्रायश्चित्त* पूर्वक संन्यास ग्रहणकर यादवने अपनेको कृतार्थ समझा। ऊर्ध्वपुण्ड्र, धारण, अंकन, दास्य, नाम आदि पंच संस्कारोंसे संस्कृत होकर उन्होंने गुरुदत्त गोविन्ददास नाम ग्रहण किया। भक्तिके प्रति उनकी श्रद्धा उत्पन्न हो गई। यादवप्रकाशके रूप, गुण, स्वभाव आदि सभीमें परिवर्त्तन हो गया। श्रीरामानुजाचार्यकी इस प्रकारकी अलौकिक शक्ति देखकर लोग उन्हें ईश्वरावतार समझने लगे। उनका यश चारों दिशाओंमें फैल गया। श्रीयादवप्रकाशका अनुताप और उनकी दीनता देखकर श्रीरामानुजाचार्यने कहा—"महानुभाव, आपका मन निर्मल हो गया है। पहले आपने श्रीवैष्णवोंकी बड़ी निन्दा की है, उस पापको धोनेके लिये 'संन्यासियोंका कर्तव्य' विषयपर आप एक ग्रन्थ बनावें। ऐसा करनेसे आपको पूर्ण शान्ति मिलेगी।"

यतिराजके कथनानुसार अल्प समयमें ही यादवने 'यतिधर्म-समुच्चय' नामक एक उत्तम ग्रन्थ बनाकर श्रीगुरुके चरणोंमें समर्पित किया। उस समय उनकी अवस्था ८० वर्षकी हो चुकी थी। इसके पश्चात् कुछ दिनों तक वे जीवित रहे। तदनन्तर उन्होंने मानवी लीला संवरण की। अब श्रीरामानुजाचार्यका कोई प्रतिद्वन्द्वी न रहा।

---

* प्रायश्चित्तके प्रमाण ये हैं :—

यस्त्वेक दण्ड मालंव्य धर्मं ब्राह्मं परित्यजेत्।
विकर्मस्थो भवेद्विप्रः सयाति नरकं ध्रुवम्॥

—**—

द्वादश अध्याय

श्रीरामानुजके भाई गोविन्दका श्रीवैष्णव होना

श्रीयामुनाचार्यके लीला संवरण करनेपर श्रीरंगमठका यथार्थमें कोई नेता नहीं था। यद्यपि श्रीमहापूर्ण और श्रीवररंग उस अलौकिक महापुरुषके उपयुक्त शिष्य थे, तथापि उनका और अन्य शिष्योंका भी मन सर्वदा उस सर्वशास्त्रमर्मज्ञ ईश्वरानुरागमय सौम्यदर्शन महानुभावके अभावका अनुभव करता था। फिर भी उनके मनमें उस अभावकी पूर्त्तिके लिये एक प्रकारकी बलवती आशा थी। उन लोगोंने गुरुमुखसे श्रीरामानुजकी बार-बार प्रशंसा सुनी थी। श्रीरामानुज अवतारी पुरुष हैं, यह बात श्रीयामुनाचार्य अपने शिष्योंसे कहा करते थे। उन्हींको ले आनेके लिये श्रीमहापूर्ण भेजे गये थे। श्रीरामानुजके घरमें बहुत दिनों तक रहकर श्रीमहापूर्णने उन्हें प्रबन्धमालामें विशेष व्युत्पन्न किया था। इस समय वे स्त्रीके साथ वहाँसे लौट आये हैं। उनकी बड़ी इच्छा थी कि वे श्रीरामानुजको साथ ही लेकर जाते; परन्तु अकस्मात् उस स्थानको छोड़ देनेके कारण वे अपना मनोरथ सिद्ध नहीं कर सके। इसी बीच जब उन्होंने लोगोंसे सुना कि उनके देवतुल्य शिष्यने संन्यास ग्रहण किया है, तब वे बड़े आनन्दित हुए और श्रीरंगनाथके समीप जाकर प्रार्थना की—"हे शरणागतपालक, परिपूर्ण

परब्रह्म, आप सभीके अभावोंको पूर्ण करते हैं, श्रीरामानुजको अपने चरणोंमें बुलाकर हम लोगोंके एक बड़े भारी अभावको पूरा करो।" प्रेम-गद्गदचित्तसे इस प्रकार प्रार्थना करनेपर श्रीभगवान्ने इस प्रकार आज्ञा दी—"वत्स महापूर्ण, तुम देवगानविशारद वररंगको काञ्चीपुरपति श्रीवरदराजके समीप भेजो। वे अत्यन्त संगीतप्रिय हैं। वररंगके गानसे सन्तुष्ट होकर जिस समय भगवान् उसे वर देने लगें, उस समय वह उनसे श्रीरामानुजको ही वरमें माँगे; क्योंकि बिना श्रीवरदराजकी आज्ञाके यतिराज उनका आश्रय नहीं त्याग सकते।"

भगवान्से इस प्रकार आज्ञा पाकर श्रीमहापूर्णने शीघ्र ही वररंगीको काञ्ची भेजा। वहाँ जाकर वररंगने संगीत द्वारा श्रीवरदराजको ऐसा सन्तुष्ट किया कि उनके श्रीरामानुजको भिक्षा-स्वरूप माँगनेपर त्रिलोकपतिने अपने भक्तके वियोग-जन्य दुःसह दुःखकी ओर दृष्टि न कर उनकी प्रार्थना पूरी की। जिस समय वररंग श्रीरामानुजको साथ लेकर श्रीरंगनाथके चरणोंमें उपस्थित हुए, उस समय मठवासी विशुद्ध स्वभाव वैष्णव तथा समस्त नगरवासियोंके आनन्दकी सीमा न रही। श्रीरंगनाथने उन्हें उभयविभूतिपति बनाया अर्थात् त्रिपाद्विभूति और लीलाविभूतिका स्वामित्व उन्हें दिया। इन विभूतियोंको पाकर यतिराज श्रीरामानुज एक अलौकिक शोभासम्पन्न हुए। देश-देशान्तरोंसे अनेक वैष्णवोंका दल आ-आकर उनके चरण-स्पर्शसे अपनेको कृतार्थ मानने लगा। उनसे विष्णु-माहात्म्य सुनकर लोगोंने उनको आदर्श वैष्णव समझा।

इसी समय उनका मन अपने परम आत्मीय गोविन्दके लिये चञ्चल हो उठा। जिस गोविन्दने उनके प्राणनाशक यादवके षड्यन्त्रका पता बताया था, जिसकी सरलता, भगवद्भक्ति और पाण्डित्यसे साथ पढ़नेवालों और गुरुको भी चकित होना पड़ता था, उसी प्राणसम बन्धुको अपने दिव्य सुखका भागी

बनानेके लिये उनका हृदय व्याकुल हुआ था। किस प्रकार वह कालहस्तिसे यहाँ आवेगा, इसीकी वे चिन्ता करने लगे। थोड़ी देरके पश्चात् उन्हें स्मरण हुआ कि परम वैष्णव श्रीशैलपूर्ण कालहस्तिके समीप श्रीशैलपर भगवत्सेवाके लिये रहते हैं। उनके द्वारा गोविन्दको वैष्णव मतमें ले आनेका प्रयत्न सफल होगा। इस प्रकार निश्चय करके उन्होंने श्रीशैलपूर्णको एक पत्र भेजा। वे परम भागवत् पत्रका मर्म जानकर उसी समयसे शिष्योंको साथ लेकर कालहस्तिके समीपस्थ एक सरोवरके तीरपर वास करने लगे।

गोविन्द प्रतिदिन उस सरोवरके तीर पुष्प लेने और स्नान करनेके लिये आते थे। दूसरे दिन यथारीत्यानुसार गोविन्दने आकर देखा कि एक दिव्य-कान्ति श्वेतश्मश्रु वैष्णव कतिपय शिष्यों-सहित वहाँ शास्त्रालाप कर रहा है। उसे सुननेकी इच्छासे पाटली-वृक्षके ऊपर पुष्प तोड़नेके लिये वे चढ़े और जो सुना, उससे उनकी वैष्णवोंपर भक्ति उत्पन्न हुई। वे वृक्षसे उतरकर स्नान करने जा रहे थे। ऐसे समय श्रीशैलपूर्णने उन्हें सम्बोधन करके कहा—"महात्मन्! किसकी सेवाके लिये आप फूल ले जाते हैं, क्या यह हम भी जान सकते हैं?" शिव-पूजनके लिये ले जा रहा हूँ, यह सुनकर और संसारको सब दुःखोंका मूल जानकर उन्होंने उनके रास्तेमें एक छोटेसे तालपत्रके टुकड़ेपर स्तोत्ररत्नके 'स्वाभाविकानवधिकातिशयेशितृत्वम्'—इस श्लोकको लिखकर रखवा दिया। गोविन्दने उस तालपत्रके टुकड़ेको हाथमें उठाकर श्लोकको पढ़ा, और कुछ देर खड़े रहकर उसके अर्थपर विचार करता रहा। अन्तमें उस टुकड़ेको फेंककर तालाबकी तरफ वह चला गया। जब जल लेकर वह तालाबसे लौटा, तब ढूँढ़कर उस तालपत्रको फिर उठा लिया और श्लोकको ध्यानसे विचारता तथा उस वैष्णवमण्डलीकी ओर स्मितवदन हो देखता हुआ चला गया। श्रीशैलपूर्ण

स्वामीजी अपने प्रयत्नका कुछ फल होते हुए देख प्रसन्नचित्त तिरुपति लौट गये। कुछ दिन बाद वे फिर कालहस्ति गये। अबकी बार गोविन्दसे खूब संल्लाप हुआ। जब तीसरी बार श्रीशैलपूर्ण कालहस्ति पधारे, तब तालाबके तटपर एक वृक्षके नीचे बैठ वे सहस्रगीतिकी व्याख्या शिष्योंको सुनाने लगे। गोविन्द पाटली-वृक्षके ऊपर चढ़कर पुष्प तोड़ रहा था। सहस्रगीतिकी व्याख्या होने लगी, तो गोविन्द पुष्प तोड़ना छोड़ दत्तचित्त हो उसीको सुनाने लगा। उसकी एक गाथामें 'अस्मत्स्वामिनोन्यस्य कस्य पुष्पं चन्दनं च योग्यं भवेत्'— यह वाक्य आया। उसकी व्याख्या सुनते ही गोविन्द पेड़से नीचे उतरा और पुष्पकी टोकनी दूर फैंककर, रुद्राक्षकी माला तोड़कर फैंक दी और श्रीशैलपूर्णके समीप दौड़ा जाकर 'न योग्यं न योग्यम्' कहते हुए उनके चरणोंमें वह पड़ गया। वह विषण्णचित्त होकर प्रलाप करने लगा। श्रीशैलपूर्णने बड़ी प्रीतिके साथ उसको उठाकर अपनी छातीसे लगाया और सान्त्वना दी। वे उसको साथ लेकर तिरुपतिको लौट गये, और वहाँ उन्होंने गोविन्दको वैष्णव दीक्षासे दीक्षित किया।